सत्यहरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र रचित ।

म० कु० बाबू रामदीन सिंह संचालित.

सत्यहरिश्चन्द्र

नाटक.

भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्र रचित.

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगतव्योहार ।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्यविचार ॥

चन्द्रे अस्तमितेऽपीयं "हरिश्चन्द्रकला" सदा
चकोरानन्द माधत्तां नित्यं खड्गविलासतः ।

हिन्दी भाषा के परम हितैषी क्षत्रिय-पत्रिका-सम्पादक
म० कु० बाबू रामदीन सिंह संकलित ।

श्री बाबू रामरण विजय सिंह द्वारा प्रकाशित ।

(CALCUTTA ENTRANCE COURSE FOR 1895, 96, 97, 98, &C.)
ALLAHABAD ENTRANC COURSE FOR 1906 &C.

बांकीपुर—खड्गविलास प्रेस में—मुद्रित ।

१९१३.

ग्रंथ प्रकाश होने का समय।

सत्यहरिश्चन्द्र को १८७६ ई० में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने बनाया था औ काशीपत्रिका के प्रथम और द्वितीय भाग में पहले पहल छपवाया था। जिन जिन जिल्दों और नम्बरों में यह छपा था उन सबों को नीचे लिख देता हूं।

काशीपत्रिका।

काशी, मंगलवार, फागुन बदी ६, सं० १६३२। १५ फरवरी, १८७६। जिल्द १, नम्बर १७। इस नम्बर से प्रारंभ हुआ।

काशी, मंगलवार, फागुन बदी ४, सं० १६३३। २६ फरवरी, सन् १८७६ ई०। जिल्द १, नं० १८।

काशी, शुक्रवार, चैत बदी ६, सं० १६३३। ३१ मार्च, १८७६। जि० १, नंबर २०।

काशी, शनिवार, बैशाख बदी ७, सं० १६३३। १५ अप्रैल, १८७६। जि० १, नं० २१।

काशी, रविवार, बैशाख सुदी ७, सं० १६३३। ३० अप्रैल, १८७६। जि० १, नं० २२।

काशी, सोमवार, जेठ बदी ७, सं० १६३३। १५ मई, १८७६। जि० १, नं० २३।

काशी, बुधवार, जेठ सुदी ६, सं० १६३३। ३१ मई, १८७६। जि० १, नं० २४।

काशी, बृहस्पतिवार, आषाढ़ बदी ८, संवत् १६३३। १५ जून, १८७६। जि० २, नं० १।

काशी, शुक्रवार, आषाढ़ सुदी ६, संवत् १६३३। ३० जून, १८७६। जि० २, नं० २।

काशी, शनिवार, सावन बदी ६, सं० १६३३। १५ जुलाई, १८७६। जि० २, नं० ३।

काशी, सोमवार, सावन सुदी ११, सं० १६३३। ३१ जुलाई, १८७६। जि० २, नं० ४।

काशी, मंगलवार, भादों सुदी ११, सं० १६३३। १५ अगस्त, १८७६। जि० २, नं० ५। इसी नं० में समाप्त हुआ।

प्रकाशक।

उपक्रम ।

मेरे मित्र बाबू बालेश्वरप्रसाद बी० ए० ने मुझ से कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखें जो लड़कों के पढ़ने पढ़ाने के योग्य हो, क्योंकि शृङ्गार रस के आप ने जो नाटक लिखे हैं वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं लड़कों को उन से कोई लाभ नहीं। उन्हीं की इच्छानुसार मैं ने यह सत्यहरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है। इस में सूर्य्यकुल-सम्भूत राजा हरिश्चन्द्र की कथा है। राजा हरिश्चन्द्र सूर्य्यवंश का अट्ठाइसवां राजा रामचन्द्र से ३५ पीढ़ी पहले त्रिशंकु का पुत्र था। इस ने शौभपुर नामक एक नगर बसाया था और बड़ा ही दानी था। इस की कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपालदेव के समय में आर्य्य क्षेमीश्वर कवि ने चंडकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चन्द्र के चरित्र में बनाया है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए, क्योंकि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य ग्रन्थ में इस का नाम लिखा है। कौशिक विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयं सिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्यकुब्ज का क्षत्रिय राजा था। यह एक बेर संयोग से वशिष्ठ के आश्रम में गया और जब वशिष्ठ ने सैन समेत उस की जाफत अपनी शबला नाम की कामधेनु गऊ के प्रताप से बड़े धूम धाम से की तो विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हजारों हाथी, घोड़े और ऊंट के बदले भी वशिष्ठ ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र

की सब सेना का नाश कर दिया। और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वशिष्ठ ने शाप से जला दिये। विश्वामित्र इस पराजय से उदास हो कर तप करने लगे और महादेव जी से वरदान में सब अस्त्र पाकर फिर वशिष्ठ से लड़ने आए वशिष्ठ ने मंत्र के बल से एक ऐसा ब्रह्मदण्ड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के सब अस्त्र निष्फल हुए। हार कर विश्वामित्र ने सोचा कि अब तप कर के ब्राह्मण होना चाहिए और तप कर के अन्त में ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हो गए। यह बाल्मीकीय रामायण के अयोध्या * कारड के ५२ से ६० सर्ग तक सविस्तर वर्णित है।

जब हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वशिष्ठ जी से कहा तो उन्हों ने उत्तर दिया कि यह अशक्य काम हम से न होगा। तब त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और जब उन से भी कोरा जवाब पाया तब कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा पूरी नहीं की और हम को कोरा जवाब दिया इस से अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वशिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट हो कर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चांडाल हो जा। बिचारा त्रिशंकु चांडाल बन कर विश्वामित्र के पास गया और दुखी हो कर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने बैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोच कर राजा से प्रतिज्ञा किया कि इसी देह से तुम को स्वर्ग भेजेंगे और सब मुनियों को बुलाकर यज्ञ करना चाहा। सब ऋषि तो आए पर वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आए और कहा कि जहां चांडाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित वहां कौन जाय। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से

* अयोध्याकाण्ड नहीं बालकांड चाहिये। प्रकाशक।

रुष्ट हो कर शाप से वशिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देख कर और बिचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ करने लगे। जब मन्त्रों से बुलाने से देवता लोग यज्ञ भाग लेने न आए तो विश्वामित्र ने क्रोध से स्रुवा उठा कर कहा कि त्रिशंकु ! यज्ञ से कुछ काम नहीं तुम हमारे तपोबल से स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आया चाहता है तो पुकारा कि अरे तू यहां आने के योग्य नहीं है नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा हो कर नीचे गिरा और विश्वामित्र से त्राहि त्राहि पुकारा। विश्वामित्र ने तपबल से उस को वहां बीच ही में स्थिर रक्खा। कर्म्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार से बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध कर के विश्वामित्र ने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिण ध्रुव के समीप सप्तर्षि और नक्षत्र इन्हों ने नए बनाए और बहुत से जीव जन्तु फल मूल बना कर जब इन्द्रादिक देवता भी दूसरे बनाने चाहे तब देवता लोग डरकर इन से क्षमा मांगने गए। इन्हों ने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रख कर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भांति प्रकाशमान स्थिर रख क्षमा किया। यह सब भी रामायण ही में है। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा इस से बड़ा काल पड़ा। विश्वामित्र एक चांडाल के घर भीख मांगने गए और जब कुत्ते का मांस पाया तो उसी से देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इन के भय से कांप गए और इन्द्र ने उस समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शांति पर्व्व के १४१ अध्याय में है। फिर हरिश्चन्द्र की विपत्ति सुन कर क्रोध से वशिष्ठ जी ने उन को शाप दिया कि तुम बकुला हो जाओ और विश्वामित्र ने यह सुन कर वशिष्ठ को शाप

दिया कि तुम आड़ी * हो जाओ। पक्षी बन कर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया, जिस से त्रैलोक्य कांप गया। अन्त में ब्रह्मा ने दोनों से मेल कराया। यह उपाख्यान मारकण्डेय पुराण के नवें अध्याय में है। इन की उत्पत्ति यों है। भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को ब्याह किये देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और बेटा बहू देखने को उन के घर आए। उन दोनों ने पिता की पूजा की और हाथ जोड़ कर सामने खड़े हो गए। भृगु ने बहू से कहा कि बेटी वर मांग। सत्यवती ने यह वर मांगा कि मुझे तो वेद शास्त्र जाननेवाला और मेरी माता को युद्धविद्या-विशारद पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कह कर ध्यान दे प्राणायाम किया और उन के श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए। भृगु ने वह बहू को दे कर कहा कि यह लाल चरु तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समय में अश्वत्थ का आलिङ्गन कर के खाय और तुम यह सफेद चरु उसी भांति उदुम्बर का आलिङ्गन कर के खाना। भृगु के वाक्यानुसार सत्यवती ने कनौज के राजा गाधि की स्त्री अपनी माता से सब कहा। उस की माता ने यह समझ कर कि ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने को चरु दिया होगा, जब ऋतुकाल आया तब लाल चरु तो कन्या को खिलाया और सफेद आप खाया। भगवान भृगु ने तपोबल से जब यह बात जानी तो आकर बहू से कहा कि तुम ने चरु को उलट पुलट किया, इस से तुम्हारा लड़का ब्राह्मण हो कर भी क्षत्रियकर्म्मा होगा और तुम्हारा भाई क्षत्रिय हो कर भी ब्राह्मण हो जायगा। सत्यवती ने जब ससुर से इस अपराध की क्षमा चाही तब उन्हों ने कहा कि अच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रियकर्म्मा होगा। वही राजा गाधि

* किसी जाति का गिद्ध।

को तो विश्वामित्र हुए और च्यवन को जमदग्नि और जमदग्नि को परशुराम हुए। यह उपाख्यान कालिकापुराण के ८४ अध्याय में स्पष्ट है।

इन उपाख्यानों के जानने से इस नाटक के पढ़नेवालों को बड़ी सहायता मिलैगी। इस भारतवर्ष में उत्पन्न और इन्हीं हम लोगों के पूर्व्व पुरुष महाराज हरिश्चन्द भी थे। यह समझ कर इस नाटक के पढ़नेवाले कुछ भी अपना चरित्र सुधारेंगे तो कवि का परिश्रम सुफल होगा।

समर्पण ।

नाथ !

यह एक नया कौतुक देखो। तुम्हारे सत्यपथ पर चलने वाले कितना कष्ट उठाते हैं यही इस में दिखाया है। भला हम क्या कहैं? जो हरिश्चन्द्र ने किया वह तो अब कोई भी भारतवासी न करैगा, पर उस वंश ही के नाते इन को भी मानना। हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं, पर तुम्हारी तो बहुत कुछ है। बस इतनी ही सही। लो सत्यहरिश्चन्द्र तुम्हें समर्पित है, अंगीकार करो। छल मत समझना। सत्य का शब्द सार्थ है, कुछ पुस्तक के बहाने समर्पण नहीं है।

तुम्हारा—

हरिश्चन्द्र।

सत्यहरिश्चन्द्र ।

मंगलाचरण ।

दोहा ।

सत्यासक्त दयाल द्विज, प्रिय अघहर सुखकन्द ।
जन हित कमला तजन जय, शिव नृप कवि हरिचन्द * ॥१॥

(नान्दी के पीछे सूत्रधार † आता है ।)

सू० ।—अहा ! आज की संध्या भी धन्य है कि इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सब की इच्छा है कि हिन्दीभाषा का कोई नवीन नाटक देखैं । धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहां के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है इतना भी नहीं जानते थे भला वहां अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त तो हुई । परन्तु हा ! शोच की बात है कि जो बड़े २ लोग हैं और जिन के किये

---

* यह श्लेष शिव जी, राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चन्द्रमा और कवि पांच का वर्णन करता है ।

† सूत्रधार हरे वा नीले रंग की साटन का कामदार जांघिया पहिने उस के आगे पट्टके की तरह कमरबन्द के दोनों किनारे नीचे ऊपर लटकते हुए, गले में चुस्त सामने बुताम की मिरजई, ऊपर माला वगैरह और सब गहिने, सिर पर टिपारा, पैर में घुंघरू, हाथ में छड़ी, पावं में पैजामा, काछनी, सिर पर मुकुट ।

कुछ हो सकता है वे ऐसी अन्ध-परम्परा में फंसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं पूछ ही नहीं है। केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की बात है जिन्हें झूठी खैरख़ाही दिखानी वा लम्बा चौड़ा गाल बजाना आता है (कुछ सोच कर) क्या हुआ, ढंग पर चला जायगा तो यों भी बहुत कुछ हो रहैगा। काल बड़ा बली है, धीरे २ सब आप हो कर देगा। पर भला आज इन लोगों को लीला कौन सी दिखाऊं। (सोच कर) अच्छा उन से भी तो पूछ लें? ऐसे कौतुकों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेष लड़ती है। (नेपथ्य की ओर देख कर) मोहना! अपने भाभी को ज़रा इधर तो भेजना।

(नेपथ्य में से, 'मैं तो आप ही आती थी' कहती हुई नटी * आती है)।

न०।—मैं तो आप ही आती थी। वह एक मनिहारिन आ गई थी उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती। कहिये आज जो लीला करनी हो वह पहिले ही से जानी रहै तो मैं और सभों से कह के सावधान कर दूं।

सू०।—आज का नाटक तो हम ने तुम्हारी ही प्रसन्नता पर छोड़ दिया है।

न०।—हम लोगों को तो सत्यहरिश्चन्द्र आज कल अच्छी तरह याद है और उस का खेल भी सब छोटे बड़े को मंज रहा है।

---

* महाराष्ट्री भेष, कमर पर पेटी कसे वा मर्दाना कपड़ा पहिने, पर वर सब जनाने।

सू० ।—ठीक है यही हो। भला इस से अच्छा और कौन नाटक होगा। एक तो इन लोगों ने उसे अभी देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणा-पूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उस का कवि भी हम लोगों का एकमात्र जीवन है।

न० ।—(लम्बी सांस ले कर) हा ! प्यारे हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी गुण रूप न समझा। क्या हुआ "कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि भरि पाछे प्यारे हरिचन्द की कहानी रहि जायंगी"।

सू० ।—इस में क्या सन्देह है। काशी के पण्डितों ही ने कहा है—

सब सज्जन के मान को, कारन इक हरिचन्द।
जिमि सुभाव दिन रैन के, कारन नित हरि चन्द *॥२†॥

और फिर उन के मित्र पण्डित शीतलाप्रसाद जी ने इस नाटक के नायक से उन की समता भी की है इस से उन के बनाये नाटकों में भी सत्यहरिश्चन्द्र ही आज खेलने को जी चाहता है।

न० ।—कैसी समता मैं भी सुनूं।

सू० ।—जो गुन नृप हरिचन्द मैं, जग हित सुनियत कान।
सो सब कबि हरिचन्द मैं, लखहु प्रतच्छ सुजान ॥३॥‡

* हरि सूर्य्य।

† "विद्वज्जनप्रतिष्ठा कारणमेको हरिश्चन्द्रः ।
यद्वत् स्वभावगत्या दिनरात्रयोर्वा हरिश्चन्द्रः" ॥

‡ "श्रूयन्ते ये हरिश्चन्द्रे जगदाह्लादिनो गुणाः ।
दृश्यन्ते ते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत्प्रियदर्शने ॥"

(नेपथ्य में)

अरे !

यहां सत्य भय एक के, कांपत सब सुरलोक ।
यह दूजो हरिचन्द को, करन इन्द्र उर सोक ॥४॥

सू० ।—(सुन कर और नेपथ्य की ओर देख कर) यह देखो ! हम लोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इन्द्र बन कर आ पहुंचा तो अब चलो हम लोग भी तैयार हों ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना ।

प्रथम अङ्क ।

जवनिका उठती है ।

(स्थान इन्द्रसभा, बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ, घर सजा हुआ ।)

(इन्द्र * आता है)

इ० ।—("यहां सत्य भय एक के" यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर उधर घूमता है) ।

(द्वारपाल † आता है)

द्वा० ।—महाराज ! नारद जी आते हैं ।

इ० ।—आने दो अच्छे अवसर पर आए ।

द्वा० ।—जो आज्ञा (जाता है) ।

इ० ।—(आप ही आप) नारद जी सारी पृथ्वी पर इधर उधर फिरा करते हैं इन से सब बातों का पक्का पता लगेगा । हम ने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि उस के धर्म्म की एक बेर परीक्षा तो लेनी चाहिए ।

(नारद जी ‡ आते हैं)

इ० ।—(हाथ जोड़ कर दण्डवत करता है) आइये आइये

---

* जामा, कीट, कुण्डल और गहने पहने हुए, हाथ में बज्र (कई फूल का छोटा माला) लिये हुए ।

† छज्जेदार पगड़ी, चपकन, घेरदार पाजामा पहने, कमरबन्द कसे और हाथ में आसा लिये हुए ।

‡ धोती की लांग कसे, गाती बांधे, सिर से पांव तक चन्दन का खौर दिये, पैर में घुंघरू, सिर के बाल छुटे और हाथ में बीन लिये हुए । आने और जाने के समय " रामकृष्ण गोविन्द " की ध्वनि नेपथ्य में से हो ।

धन्य भाग्य, आज किधर भूल पड़े।

ना० ।—हमैं और भी कोई काम है, केवल यहां से वहां और वहां से यहां, यही हमैं है कि और भी कुछ।

इ० ।—साधु स्वभावही से परोपकारी होते हैं विशेष कर के आप ऐसे जो हमारे से दीन गृहस्थों को घर बैठ दर्शन देते हैं। क्योंकि जो लोग गृहस्थ और कामकाजी हैं वे स्वभावही से गृहस्थी के बन्धनों से ऐसे जकड़ जाते हैं कि साधुसङ्गम तो उन को सपने में भी दुर्लभ हो जाता है, न वे अपने प्रबन्धों से छुट्टी पावेंगे न कहीं जायंगे।

ना० ।—आप को इतना शिष्टाचार नहीं सोहता। आप देवराज हैं और आप के संग की तो बड़े बड़े ऋषि मुनि इच्छा करते हैं फिर आप को सत्सङ्ग कौन दुर्लभ है? केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुंहदेखा व्यापार होता है वैसी ही बातैं आप इस समय कर रहे हैं।

इ० ।—हम को बड़ा शोच है कि आप ने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा। क्षमा कीजिये आप से हम बनावट नहीं करते। भला बिराजिये तो सही यह बातैं तो होती ही रहैंगी।

० ।—बिराजिये (दोनों बैठते हैं)।

० ।—कहिये इस समय कहां से आना हुआ?

ना० ।—अयोध्या से। आहा! राजा हरिश्चन्द्र धन्य है। मैं तो उस के निष्कपट और अकृत्रिम सुभाव से बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। यद्यपि इसी सूर्य्यकुल में अनेक बड़े बड़े धार्मिक हुए पर हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्र ही है।

इ० ।—(आप ही आप) यह भी तो उसी का गुण गाते हैं।

ना० ।—महाराज! सत्य की तो मानो हरिश्चन्द्र मूर्त्ति है।

निस्सन्देह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारतभूमि का सिर केवल इन के स्मरण से उस समय भी ऊंचा रहेगा जब यह पराधीन हो कर हीनावस्था को प्राप्त होगी।

इ० ।—(आप ही आप) अहा ! हृदय भी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनाई है। यद्यपि इस का स्वभाव सहज ही गुण-ग्राही हो तथापि दूसरों की उत्कट कीर्त्ति से इस में ईर्षा होती है, उस में भी जो जितने बड़े हैं उन की ईर्षा उतनी ही बड़ी है। हमारे ऐसे बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना सन्ताप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्त्ति।

ना० ।—आप क्या सोच रहे हैं ?

इ० ।—कुछ नहीं। योंहीं, मैं यह सोचता था कि हरिश्चन्द्र की कीर्त्ति आजकल छोटे बड़े सब के मुंह से सुनाई पड़ती है, इस से निश्चय होता है कि नहीं, हरिश्चन्द्र निस्सन्देह बड़ा मनुष्य है।

ना० ।—क्यों नहीं, बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे बड़े सब मानें और फिर नाम भी तो उसी का रह जायगा जो ऐसा दृढ़ हो कर धर्म्मसाधन करैगा (आप ही आप) और उस की बड़ाई का यह भी तो एक बड़ा प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उस से बुरा मानते हैं, क्योंकि जिस से बड़े २ लोग डाह करैं, पर उस का कुछ बिगाड़ न सकें, वह निस्सन्देह बहुत बड़ा मनुष्य है।

इ० ।—भला ! उस के गृह-चरित्र कैसे हैं ?

ना० ।—दूसरों के लिये उदाहरण बनाने के योग्य। भला पहले जिस ने अपने निज के और अपने घर के चरित्र

ही नहीं शुद्ध किये हैं उस की और बातों पर क्या विश्वास हो सकता है। शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है। वचन से उपदेशक और क्रियादिक से कैसा भी धर्म्मनिष्ठ क्यों न हो पर यदि उस के चरित्र शुद्ध नहीं हैं तो लोगों में वह टकसाल न समझा जायगा और उस की बातें प्रमाण न होंगी। महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उन के मन वचन और कर्म्म एक रहते हैं, इन के भिन्न भिन्न। निस्सन्देह हरिश्चन्द्र महाशय है। उस के आशय बहुत उदार हैं इस में कोई सन्देह नहीं।

इ० ।—भला ! आप उदार वा महाशय किस को कहते हैं ?

ना० ।—जिस का भीतर बाहर एक सा हो और विद्यानुरागिता उपकारप्रियता आदि गुण जिस में सहज हों, अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य्य, सम्पत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिस की स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसी की माता पुत्रवती है। हरिश्चन्द्र में ये सब बातें सहज हैं। दान कर के उस को प्रसन्नता होती है और कितना भी दे पर सन्तोष नहीं होता, यही समझता है कि अभी कुछ नहीं दिया।

इ० ।—(आप ही आप) हृदय ! पत्थर के हो कर तुम यह सब कान खोल के सुनो।

ना० ।—और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चला भक्ति उस में ऐसी है जो सब का भूषण है। क्योंकि उस के बिना किसी की शोभा नहीं। फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को सन्देह होता है कि इन्हें राजकाज देखने की छुट्टी कब मिलती है। सच है, छोटे जी के लोग

थोड़े ही कामों में ऐसे घबड़ा जाते हैं मानों सारे संसार का बोझ इन्हीं पर है, पर जो बड़े लोग हैं उन के सब काम महारम्भ होते हैं तब भी उन के मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती, क्योंकि एक तो उन के उदार चित्त में धैर्य्य और अवकाश बहुत है, दूसरे उन के समय व्यर्थ नहीं जाते और ऐसे यथायोग बंटे रहते हैं जिस से उन पर कभी भीड़ पड़ती ही नहीं।

इ० ।—भला महाराज! यह ऐसे दानी हैं तो उन की लक्ष्मी कैसे स्थिर है!

ना० ।—यही तो हम कहते हैं। निस्सन्देह वह राजा कुल का कलंक है, जिस ने बिना पात्र विचारे दान देते देते सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया, आप कुछ उपार्जन किया ही नहीं जो था वह नाश हो गया और जहां प्रबन्ध है वहां धन की क्या कमती है। मनुष्य कितना धन देगा और जाचक कितना लेंगे?

इ० ।—पर यदि कोई अपने बित्त के बाहर मांगे या ऐसी वस्तु मांगे जिस से दाता की सर्वस्व-हानि होती हो तो वह दे कि नहीं?

ना० ।—क्यों नहीं। अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है, पात्र चाहिए। जिस को धन पाकर सत्पात्र में उस के त्याग की शक्ति नहीं है वह उदार कहां हुआ!

इ० ।—(आप ही आप) भला देखैंगे न।

ना० ।—राजन्! मानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु ही नहीं है। वे तो अपने सहज सुभाव ही से सत्य और विचार तथा दृढ़ता में ऐसे बँधे हैं, कि सत्पात्र मिलने या बात पड़ने पर उन को स्वर्ण का पर्वत भी तिल सा दिखाई देता है। और उस में भी

हरिश्चन्द्र—जिस का सत्य पर ऐसा स्नेह है जैसा भूमि, कोष, रानी और तलवार पर भी नहीं है। जो सत्यानुरागी ही नहीं है भला उस से न्याव कब होगा? और जिस में न्याव नहीं है वह राजा ही काहे का है? कैसी भी विपत्ति और उभय संकट पड़े और कैसी ही हानि वा लाभ हो पर जो न्याव न छोड़े वही धीर और वही राजा। और उस न्याव का मूल सत्य है।

इ०।—तो भला वह जिसे जो देने को कहैगा देगा वा जो करने को कहैगा वह करैगा?

ना०।—क्या आप उस का परिहास करते हैं? किसी बड़े के विषय में ऐसी शंका ही उस की निन्दा है। क्या आप ने उस का यह सहज साभिमान बचन नहीं सुना है?

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगतब्योहार।
पै दृढ़ श्री हरिचंद को, टरै न सत्यबिचार॥

इ०।—(आप ही आप) तो फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हम को भी अच्छा उपाय मिला। (प्रगट) हां! पर आप यह भी जानते हैं कि क्या वह यह सब धर्म स्वर्ग लेने को करता है?

ना०।—वाह! भला जो ऐसे हैं उन के आगे स्वर्ग क्या वस्तु है? क्या बड़े लोग धर्म्म स्वर्ग पाने को करते हैं? जो अपने निर्म्मल चरित्र से सन्तुष्ट हैं उन के आगे स्वर्ग कौन वस्तु है? फिर भला जिन के शुद्ध हृदय और सहज व्यवहार हैं, वे क्या यश वा स्वर्ग की लालच से धर्म्म करते हैं? वे तो आप के स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं और जिन लोगों को भगवान के

चरणारविन्द में भक्ति है वे क्या किसी कामना से धर्म्माचरण करते हैं? यह भी तो एक क्षुद्रता है कि इस लोक में एक दे कर परलोक में दो की आशा रखना।

इं०।—(आप ही आप) हम ने माना कि उस को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि अपने कर्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो जायगा।

ना०।—और जिन को अपने किये शुभ अनुष्ठानों से आप सन्तोष मिलता है उन के उस असीम आनन्द के आगे आप के स्वर्ग का अमृतपान और अप्सरा तो महा तुच्छ हैं। क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभ कृत्य का बदला चाहते हैं?

इं०।—तथापि एक बेर उन के सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।

ना०।—राजन्! आप का यह सब सोचना बहुत अयोग्य है। ईश्वर ने आप को बड़ा किया है तो आप को दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर सन्तोष करना चाहिए। ईर्षा करना तो क्षुद्राशयों का काम है। महाशय वही है जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझै।

इं०।—(आप ही आप) इन से काम न होगा। (बात बहला कर प्रगट) नहीं नहीं, मेरी यह इच्छा थी कि मैं भी उन के गुणों को अपनी आंखों से देखता; भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूं जिस से उन्हें कुछ कष्ट हो।

ना०।—(आप ही आप) अहा! बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा वही है जिस का चित्त बड़ा है।

अधिकार तो बड़ा है पर चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझा करती हैं, वह आदर के योग्य नहीं है; परन्तु जो कैसा भी दरिद्र है पर उस का चित्त उदार और बड़ा है वही आदरणीय है।

(द्वारपाल आता है)

द्वा० ।—महाराज ! विश्वामित्र जी आये हैं।

इ० ।—(आप ही आप) हां, इन से यह काम होगा। अच्छे अवसर पर आए। जैसा काम हो वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहिएं। (प्रगट) हां हां, लिवा लाओ।

द्वा० ।—जो आज्ञा। (जाता है)।

(विश्वामित्र * जी आते हैं)

इ० ।—(प्रणामादि शिष्टाचार कर के) आइये भगवन्, विराजिये।

वि० ।—(नारद जी को प्रणाम कर के और इन्द्र को आशीर्वाद दे कर बैठते हैं)

ना० ।—तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक काम को जाना है।

वि० ।—यह क्या ? हमारे आते ही आप चले, भला ऐसी रुष्टता किस काम की ?

ना० ।—हरे हरे ! आप ऐसी बात सोचते हैं—रामराम, भला आप के आने से हम क्यों जायंगे ? मैं तो जाने ही को था कि इतने में आप आ गये।

इ० ।—(हंस कर) आप की जो इच्छा।

ना० ।—(आप ही आप) हमारी इच्छा क्या—अब तो आप ही की यह इच्छा है कि हम जायं, क्योंकि अब आप तो विश्व के अमित्र जी से राजा हरिश्चन्द्र को दुःख देने की सलाह कीजियेगा तो हम उस के बाधक क्यों हों ? पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं उतना ही उन की सत्य कीर्ति तपाये सोने की भांति और भी चमकती है, क्योंकि विपत्ति बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती। (प्रगट) यद्यपि "जो इच्छा" आप ने सहज भाव से कहा है तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन वचन नहीं कहते, क्योंकि इन वाक्यों से रूखा-पन झलकता है। मैं कुछ इस का ध्यान नहीं करता, केवल मित्र भाव से कहता हूं। लो, जाता हूँ और यही आशीर्वाद दे कर जाता हूं कि तुम किसी को कष्टदायक मत हो, क्योंकि अधिकार पाकर कष्ट देना यह बड़ों की शोभा नहीं, सुख देना शोभा है।

इ० ।—(कुछ लज्जित होकर प्रणाम करता है)

(नारद जी जाते हैं)

वि० ।—यह क्यों ? आज नारद भगवान ऐसी जली कटी क्यों बोलते थे, क्या तुम ने कुछ कहा था ?

इ०।—नहीं तो, राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग निकला था सो उन्हों ने उस की बड़ी स्तुति की और हमारा उच्चपद का आदरणीय स्वभाव उस परकीर्त्ति को सहन न कर सका, इस में कुछ बात ही बात ऐसा सन्देह होता है कि वे रुष्ट हो गए।

वि० । तो हरिश्चन्द्र में कौन से गुण हैं ?

(सहज ही भृकुटी चढ़ जाती है)

इ० ।—(ऋषि का भ्रूभंग देख कर चित्त में सन्तोष कर के उन का क्रोध बढ़ाता हुआ) महाराज ! सिपारसी लोग चाहे जिस को बढ़ा दें चाहे घटा दें। भला सत्यधर्म्म पालन क्या हंसी खेल है ! यह आप ऐसे महात्माओं ही का काम है जिन्हों ने घर बार छोड़ दिया है। भला राज कर के और घर में रह के मनुष्य क्या धर्म्म का हठ करैगा ! और फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ती। इन्हीं बातों से तो नारद जी बिना बात ही अप्रसन्न हुए।

वि० ।—मैं अभी देखता हूं न। जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनैगा और क्या दानीपने का अभिमान करैगा ?

(क्रोध पूर्व्वक उठ कर चला चाहते हैं कि परदा गिरता है)।

इति प्रथम अङ्क।

दूसरा अङ्क।

स्थान—राजाहरिश्चन्द्र का राजभवन।

(रानी शैव्या * बैठी हैं और एक सहेली बगल में खड़ी है†)

रा०।—अरी! आज मैं ने ऐसे बुरे २ सपने देखे हैं कि जब से सो के उठी हूं कलेजा कांप रहा है। भगवान कुशल करें।

स०।—महाराज के पुन्य प्रताप से सब कुशल ही होगी आप कुछ चिन्ता न करें। भला क्या सपना देखा है मैं भी सुनूं!

रा०।—महाराज को तो मैं ने सारे अंग में भस्म लगाए देखा है और अपने को बाल खोले, और (आंखों में आंसू भर कर) रोहितास्व को देखा है कि उसे सांप काट गया है।

स०।—राम! राम! भगवान सब कुशल करेगा। भगवान करे रोहितास्व जुग जुग जिए और जब तक गंगा जमुना में पानी है आप का सोहाग अचल रहे। भला आप ने इस की शान्ति का भी कुछ उपाय किया है?

रा०।—हां, गुरुजी से तो सब समाचार कहला भेजा है, देखो वह क्या करते हैं।

स०।—हे भगवान! हमारे महाराज महारानी कुंअर सब कुशल से रहैं, मैं आंचल पसार के यह वरदान मांगती हूं।

---

* लहंगा, साड़ी, सब जनाना गहिना, बन्दी, बेना इत्यादि।

† साड़ी, सादा सिंगार।

(ब्राह्मण * आता है)

ब्रा० ।—(आशीर्वाद देता है)

स्वस्त्यस्तुतेकुशलमस्तुचिरायुरस्तु ।
गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु ॥
ऐश्वर्य्यमस्तुकुशलोस्तुरिपुक्षयोस्तु ।
सन्तानवृद्धिसहिता हरिभक्तिरस्तु ॥

रा० ।—(हाथ जोड़ कर प्रणाम करती है)

ब्रा० ।—महाराज ! गुरु जी ने यह अभिमन्त्रित जल भेजा है, इसे महारानी पहिले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा सा पान भी कर लें और यह रक्षाबन्धन भेजा है इसे कुमार रोहितास्व की दहनी भुजा पर बांध दें, फिर इस जल से मैं मार्जन करूंगा ।

रा० ।—(नेत्र में जल लगा कर और कुछ मुंह फेर कर आचमन कर के) मालती ! यह रक्षाबन्धन तू सम्हाल के अपने पास रख, जब रोहितास्व मिले उस के दहिने हाथ पर बांध दीजियो ।

स० ।—जो आज्ञा (रक्षाबन्धन अपने पास रखती है)

ब्रा० ।—तो अब आप सावधान हो जायं, मैं मार्जन करूं लूं ।

रा० ।—(सावधान होकर) जो आज्ञा ।

ब्रा० ।—(दूर्वा से मार्जन करता है)

देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
गन्धर्वाःकिन्नरा नागा रक्षां कुर्व्वन्तु ते सदा ॥

---

* धोती, उपरना, सिर पर चुंदी वा सिर पर बाल, डाढ़ी, हाथों में पवित्री, तिलक, खड़ाऊं ।

पितरोगुह्यकायक्षा देव्यो भूताश्चमातरः ।
सर्व्वेत्वामभिषिञ्चन्तु रक्षांकुर्व्वन्तु ते सदा ॥

भद्रमस्तु शिवश्चास्तुमहालक्ष्मीः प्रसीदतु ।
पतिपुत्र-युता साध्वी जीवत्वंशरदांशतम् ॥

(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंक कर)

यत्पापंरोगमशुभंतद्दूरेप्रतिहतमस्तु ।

(फिर रानी पर मार्जन कर के)

यन्मङ्गलं शुभं सौभाग्यं धनधान्यमारोग्यम्बहु—
पुत्रत्वं तत्सर्व्वमीश-प्रसादात् ब्राह्मणवचनात्त्वय्यस्तु ॥

(मार्जन कर के फूल अक्षत रानी के हाथ में देता है)

रा० ।—(हाथ जोड़ कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है) महाराज, गुरु जी से मेरी ओर से बिनती कर के दण्डवत कह दीजियेगा ।

ब्रा० ।—जो आज्ञा (आशीर्वाद देकर जाता है) ।

रा० ।—आज महाराज अब तक सभा में नहीं आये ?

स० ।—अब आते होंगे, पूजा में कुछ देर लगी होगी ।

(नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं)

(राग भैरव)

प्रगटहु रवि-कुल-रवि निसि बीती प्रजा-कमल-गन फूले ।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन-भय-तम उनमूले ॥
नसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो ।
मागध बंदी सूत चिरैयन मिलि कल रोर मचायो ॥
तुव जस सीतल पौन परसि चटकी गुलाब की कलियां ।
अति मख पाइ असीस देत सोइ करि अंगुरिन चट अलियां ॥

भए धरम मैं थित सब द्विज जन प्रजा काज निज लागे।
रिपु-जुवती-मुख-कुमुद मन्द, जन चक्रवाक अनुरागे॥
अरध सरिस उपहार लिये नृप ठाढ़े तिन कहं तोखौ।
न्याय कृपा सों ऊंच नीच सम समुझि परसि कर पोखौ॥

(नेपथ्य में से बाजे की धुनि सुन पड़ती है)

रा०।—महाराज ठाकुर जी के मन्दिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बन्दी लोग भी गाते आते हैं।

स०।—आप कहती हैं चले? वह देखिये आ पहुंचे, कि चले?

रा०।—(घबड़ा कर आदर के हेतु उठती हैं)

(* परिकर सहित महाराज हरिश्चन्द्र † आते हैं)

(रानी प्रणाम करती है और सब लोग यथा स्थान बैठते हैं)

ह०।—(रानी से प्रीति पूर्वक) प्रिये! आज तुम्हारा मुख-चन्द्र मलिन क्यों हो रहा है?

रा०।—पिछली रात मैं ने कुछ दुःस्वप्न ऐसे देखे हैं जिन से चित्त व्याकुल हो रहा है।

ह०।—प्रिये! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु

---

* राजा के परिकर में प्रथम मंत्री नीमा पैजामा कमरबन्द दुशाला पगड़ी सिरपेच सजे। दो मुसाहिब साधारण सभ्यों के वेष में एक निशानवाला सेवक के भेष में। निशान पर सूर्य्य के नीचे "सत्येनास्ति भयंकचित्" लिखा हुआ। चार शस्त्रधारी अङ्गरक्षक दो सेवक।

† सपेद वा केसरी जामा पैजामा कमरबन्द मर्दाना सब गहना सिर पर किरीट वा पगड़ी सिरपेंचतुर्रा, हाथ में तलवार, दुशाला या कोई चमकता रूमाल ओढ़े।

होता है पर तुम तो बीर-कन्या, बीर-पत्नी और बीर-माता हो, तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों ?

रा० ।—नाथ ! मोह से धीरज जाता रहता है ।

ह० ।—तो गुरु जी से कुछ शांति करने को नहीं कहलाया ?

रा० ।—महाराज ! शांति तो गुरु जी ने कर दी है ।

ह० ।—तब क्या चिन्ता है ? शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रक्खो सब कल्याण होगा । सदा सर्वदा सहज मंगल साधन करते भी जो आपत्ति आ पड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के सन्तोष करना चाहिए ।

रा० ।—महाराज ! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने ग्रंथों में देखा है ?

ह० ।—(रानी की बात अनसुनी कर के) स्वप्न तो कुछ हम ने भी देखा है । (चिन्ता पूर्वक स्मरण करके) हां, यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्या साधन करने को सब दिव्य महा विद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जान कर उन को बचाने गया हूं तो वह मुझी से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैं ने उसे मनाया है तो उस ने मुझ से मेरा सारा राज्य मांगा है मैं ने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया ।

(इतना कह कर अत्यन्त व्याकुलता नाट्य करता है)

रा० ।—नाथ ! आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गये ?

ह० ।—मैं यह सोचता हूं कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहां पाऊंगा और बिना उस की थाती उसे सौंपे भोजन कैसे करूंगा ?

रा० ।—नाथ ! क्या स्वप्न के व्यवहार को भी आप सत्य मानियेगा ?

ह० ।—प्रिये ! हरिश्चन्द्र की अर्द्धाङ्गिनी हो कर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है । हा ! भला तुम ऐसी बात मुंह से निकालती हो ! स्वप्न किस ने देखा है ? मैं ने न ? फिर क्या ? स्वप्न संसार अपने काल में असत्य है इस का कौन प्रमाण है ? और जो अब असत्य कहो तो मरने के पीछे तो यह संसार भी असत्य है, फिर उस में पर-लोक के हेतु लोग धर्म्माचरण क्यों करते हैं ? दिया सो दिया, क्या स्वप्न में क्या प्रत्यक्ष ?

रा० ।—(हाथ जोड़ कर) नाथ ! क्षमा कीजिये, स्त्री की बुद्धि ही कितनी ।

ह० ।—(चिन्ता कर के) पर मैं अब करूं क्या ! अच्छा ! प्रधान ! नगर में डौंड़ी पिटवा दो कि राज्य के सब लोग आज से इसे अज्ञातनाम-गोत्र ब्राह्मण का समझें, उस के अभाव में हरिश्चन्द्र उस के सेवक की भांति उस की थाती समझ के राजकार्य्य करेगा और दो मुहर राज काज के हेतु बनवा लो, एक पर " अज्ञात-नाम-गोत्र ब्राह्मण महाराज का सेवक हरिश्चन्द्र " और दूसरे पर " राजाधिराज अज्ञात-नाम-गोत्र ब्राह्मण महा-राज " खुदा रहे और आज से राज काज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे । देश के राजाओं और बड़े २ कार्य्याधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में अज्ञातनाम-गोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है इस से आज से उस का राज हरिश्चन्द्र मंत्री की भांति सम्हालेगा !

(द्वारपाल आता है)

द्वा० ।—महाराजाधिराज ! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है।

ह० ।—(घबड़ा कर) अभी आदर पूर्वक ले आओ।

द्वा० ।—जो आज्ञा (जाता है)।

ह० ।—यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात है।

(द्वारपाल के साथ विश्वामित्र * आते हैं)

ह० ।—(आदर पूर्व्वक आगे से ले कर और प्रणाम कर के) महाराज ! पधारिए, यह आसन है।

वि० ।—बैठे। बैठ चुके, बोल अभी तैं ने मुझे पहिचाना कि नहीं ?

ह० ।—(घबड़ा कर) महाराज ! पूर्व्व परिचित तो आप ज्ञात होते हैं।

वि० ।—(क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम ! तू काहे को पहिचानेगा, सच है रे सूर्य्यकुलकलंक ! तू क्यों पहिचानेगा, धिक्कार है तेरे मिथ्या-धर्म्माभिमान को, ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट ! तैं भूल गया; कल पृथ्वी किस को दान दी थी ? जानता नहीं कि मैं कौन हूँ ?

"जातिस्वयंग्रहणदुर्ललितैकविप्रं ।
दृप्यद्वशिष्ठसुतकाननधूमकेतुम् ॥

---

* जटा और डाढ़ी बढ़ाए, खड़ाऊं पहिने, गले में मृगछाला बांधे, धोती पर बाघ की मोटी करधनी, एक हाथ में कुश और कमंडल।

सर्गान्तराहरणभीतजगत्कृतान्तं ।
चाण्डालयाजिनमवैषि न कौशिकं माम्॥"

ह० ।—(पैरों पर गिर के बड़े विनय से) महाराज ! भला आप को त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जो न जानेगा ?

"अब्रह्मण्यादिषु तथाविहितात्मवृत्ति ।
राजप्रतिग्रहपराङ्मुखमानसं त्वाम् ॥
आड़ीबकप्रधनकम्पितजीवलोकं ।
कस्तेजसां च तपसां च निधिं न वेत्ति ॥

वि० ।—(क्रोध से) सच है रे पाप पाषंड मिथ्यादान बीर ! तू क्यों न मुझे "राज-प्रतिग्रह-पराङ्मुख" कहेगा; क्योंकि तैं ने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान दी है, ठहर, ठहर देख, इस झूठ का कैसा फल भोगता है। हा ! इसे देख कर क्रोध से जैसे मेरी दहिनी भुजा शाप देने को उठती है वैसे ही जातिस्मरण के संस्कार से बाईं भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है (अत्यन्त क्रोध से लंबी सांस लेकर और बांह उठा कर) अरे ब्रह्मा ! सम्हाल अपनी सृष्टि को, नहीं तो परमतेजपुञ्ज दीर्घ-तपोवर्द्धित मेरे आज इस असह्य क्रोध से सारा संसार नाश हो जायगा, अथवा संसार के नाश ही से क्या ? ब्रह्मा का तो गर्व्व उसी दिन मैं ने चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई, आज इस राजकुलांगार का अभिमान चूर्ण करूंगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत् में दानी प्रसिद्ध हो रहा है।

ह० ।—(पैरों पर गिर के) महाराज ! क्षमा कीजिए, मैं ने इस बुद्धि से नहीं कहा था, सारी पृथ्वी आप की, मैं

आप का, भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुंह से निकालते हैं! (ईषत्क्रोध से) और आप बारंबार मुझे झूठा न कहिए, सुनिए, मेरी यह प्रतिज्ञा है।—

"चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्योहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को, टरै न सत्य विचार॥"

वि०।—(क्रोध और अनादर पूर्व्वक हंस कर) हहहह! सच है सच है रे मूढ़। क्यों नहीं, आखिर सूर्य्यवंशी है। तो दे हमारी पृथ्वी।

ह०।—लीजिये, इस में बिलम्ब क्या है, मैं ने तो आप के आगमन के पूर्व्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है (पृथ्वी की ओर देख कर)।

जेहि पाली इक्ष्वाकु सों, अबलौं रवि-कुल-राज।
ताहि देत हरिचन्द नृप, विश्वामित्रहिं आज॥
वसुधे! तुम बहु सुख कियो, मम पुरुषन की होय।
धरमबद्ध हरिचन्द को, छमहु सु परबस जोय॥

वि०।—(आप ही आप) अच्छा! अभी अभिमान दिखा ले, तो मेरा नाम विश्वामित्र, जो तुझ को सत्य-भ्रष्ट कर के छोड़ा और लक्ष्मी से तो हो ही चुका है। (प्रगट) स्वस्ति; अब इस महादान की दक्षिणा कहां है?

ह०।—महाराज! जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है।

वि०।—भला सहस्र स्वर्णमुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी!

ह०।—जो आज्ञा (मंत्री से) मन्त्री! हजार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ।

वि० ।—(क्रोध से) "मन्त्री ! हजार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ" मंत्री कहां से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है ? झूठा कहीं का, देना ही नहीं था तो मुँह से कहा क्यों ? चल, मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा ।

ह० ।—(हाथ जोड़ कर विनय से) महाराज ठीक है । ख़ज़ाना अब सब आप का है, मैं भूला, क्षमा कीजिए । क्या हुआ ख़ज़ाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है ।

वि० ।—एक महीने में जो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदंड गिराऊंगा, देख केवल एक मास की अवधि है ।

ह० ।—महाराज ! मैं ब्रह्मदंड से उतना नहीं डरता जितना सत्यदंड से । इस से :—

बेचि देह दारा सुअन, होइ दास हू मन्द ।
रखिहै निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द ॥

(आकाश से फूल की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती है) ।

(जवनिका गिरती है)

इति दूसरा अङ्क ।

तीसरे अङ्क में अङ्कावतार।

स्थान बाराणसी का बाहरी प्रान्त तालाब।

(पाप * आता है)

पा०।—(इधर उधर दौड़ता और हांफता हुआ) मरे रे मरे! जले रे जले!! कहां जांय, सारी पृथ्वी तो हरिश्चन्द्र के पुन्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर ही नहीं सकते। सुना है कि राजा हरिश्चन्द्र काशी गये हैं, क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वी तो हम को तुम ने दान दे दी है इस से पृथ्वी में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को बेच कर हम से उरिन नहीं हो सकते। यह बात जब हरिश्चन्द्र ने सुनी तो बहुत ही घबराये और सोच बिचार कर कहा कि बहुत अच्छा महाराज! हम काशी में अपना शरीर बेचेंगे, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है। यह सुन कर हम भी दौड़े कि चलो हम भी काशी चलें, क्योंकि जहां हरिश्चन्द्र का राज्य न होगा वहां हमारे प्राण बचेंगे, सो यहां और भी उत्पात हो रहा है। जहां देखो वहां स्नान, पूजा, जप, पाठ, दान, धर्म, होम इत्यादि में लोग ऐसे लगे रहते हैं कि हमारी मानो जड़ ही खोद डालैंगे। रात दिन शंख घंटा की

---

* काजल सा रंग, लाल नेत्र, महा कुरूप, हाथ में नंगी तलवार लिए, नीला काछा काछे।

घनघोर धुनि के साथ वेद की धुनि मानो ललकार २ के हमारे शत्रु धर्म्म की जय मनाती है और हमारे ताप से कैसा भी मनुष्य क्यों न तपा हो भगवती भागीरथी के जलकण मिले वायु से उस का हृदय एक साथ ही शीतल हो जाता है। इस के उपरान्त शिशिशि...... ......ध्वनि अलग मारे डालती है। हाय! कहां जांय क्या करें? हमारी तो संसार से मानो जड़ ही काटी जाती है, भला और जगह तो कुछ हमारी चलती भी है, पर यहां तो मानो हमारा राज ही नहीं, कैसा भी बड़ा पापी क्यों न हो यहां आया कि गति भई!

(नेपथ्य में)

सच है "येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः"

पा०।—अरे रे। यह कौन महा भयंकर भेष अंग में भभूत पोते, एड़ी तक जटा लटकाए, लाल लाल आंख निकाले साक्षात् काल की भांति त्रिशूल घुमाता चला आता है। प्राण! तुम्हें जो अपनी रक्षा करनी हो तो भागो पाताल में, अब इस समय भूमंडल में तुम्हारा ठिकाना लगना कठिन ही है।

(भागता हुआ जाता है)

(भैरव * आते हैं)

भै०।—सच है "येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः" देखो इतना बड़ा पुन्यशील राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी आत्मा और पुत्र बेचने को यहीं आया है! अहा! धन्य

* महादेव जी का सा सिंगार, तीन नेत्र, नीला रंग, एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में प्याला।

है सत्य। आज जब भगवान भूतनाथ राजा हरिश्चन्द्र का वृत्तान्त भवानी से कहने लगे तो उन के तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण हो गये और रोमांच होने से सब शरीर के भस्मकण अलग अलग हो गए। मुझ को आज्ञा भी हुई है कि अलक्ष रूप से तुम सर्वदा राजा हरिश्चन्द्र की अंगरक्षा करना; इस से चलूं मैं भी भेस बदल कर भगवान की आज्ञा पालन में प्रवृत्त होऊं।

(जाते हैं। जवनिका गिरती है)

तीसरे अङ्क में यह अङ्कावतार समाप्त हुआ।

तीसरा अङ्क।

(स्थान काशी के घाट किनारे की सड़क)

(महाराज हरिश्चन्द्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं।)

ह० ।—देखो काशी भी पहुंच गये। अहा! धन्य है काशी! भगवति बाराणसि! तुम्हें अनेक प्रणाम है। अहा! काशी की कैसी अनूपम शोभा है!

"चारहु आश्रम बर्न बसैं मनि कंचन धाम अकास विभासिका। सोभा नहीं कहि जाय कछू बिधिनै रची मानो पुरीन की नासिका॥ आपु बसै गिरिधारन जू तट, देव-नदी बर बारि बिलासिका। पुन्य-प्रकासिका पाप-बिनासिका हीय-हुलासिका सोहत कासिका॥ १॥"

"बसैं बिंदुमाधव बिसेसरादि देव सबै दरसन ही तें लागै जम मुख मसी है। तीरथ अनादि पंच गंगा मनिकर्निकादि सात आवरण मध्य पुन्य रूप धसी है॥ गिरिधरदास पास भागीरथी सोभा देत जाकी धार तीरै आसु कर्म रूप रसी है। ससी सम जसी असी बरना में बसी पाप खसी हेतु असी ऐसी लसी बाराणसी है॥ २॥"

"रचित प्रभासी भासी अवलि मकानन की जिन में अकासी फबै रतन नकासी है। फिरैं दास दासी बिप्र गृही औ संन्यासी लसै बर गुन रासी देवपुरी हू न जासी है॥ गिरिधर दास विस्व कीरति विलासी रमा हासी लौं उजासी जाकी जगत हुलासी है। खासी परकासी पुनवांसी चन्द्रिका-सी जाके बासी अविनासी अघनासी ऐसी कासी है" ॥३॥

देखो ? जैसा ईश्वर ने यह सुन्दर अंगूठी के नगीने सा नगर बनाया है वैसी ही नदी भी इस के लिये दी है। धन्य गंगे !

" जम की सब त्रास बिनास करी मुख ते निज नाम उचारन में। सब पाप प्रतापहिं दूर दखा तुम आपन आप निहारन में॥ अहो गंग अनंग के सत्रु करे बहु, नेकु जलै मुख डारन में। गिरिधारन जू कितने बिरचे गिरधारन, धारन धारन में॥ ४॥ " *

कुछ महात्म ही पर नहीं गंगा जी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है। अहा !

नव उज्जल जलधार, हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्का मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग-स्वर्ग-सोपान-सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्रीहरिपद-नख-चन्द्रकान्त-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमंडल-मंडन, भव-खंडन सुर-सरबस॥
शिव-सिर-मालतिमाल, भगीरथ-नृपति-पुन्य-फल।
ऐरावत-गज गिरि-पति-हिम-नग-कंठहार कल॥
सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारण।
अगिनित धारा रूप धारि सागर संचारण॥

* यह चारो कवित्त ग्रन्थकर्त्ता के पिता श्री बाबू गोपालचन्द्र के बनाए हैं, जो कविता में अपना नाम गिरिधर दास या गिरिधारन रखते थे।

कासी कहं प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हू नहिं तजी, रही अंकम लपटाई॥
कहूं बंधे नवघाट उच्च-गिरिवर-सम सोहत।
कहुं छतरी, कहुं मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवल-धाम चहुं ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौबत बजत, कहूं नारी नर गावत।
बेद पढ़त कहुं द्विज, कहुं जोगी ध्यान लगावत॥
कहुं सुन्दरी नहात नीरी कर-जुगल उछारत।
जुग अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोअत सुन्दरि बदन करन अति ही छबि पावत।
बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत॥
सुन्दरि-ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
दीठि जहीं जहं जात रहत तितही ठहराई।
गंगा-छबि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई॥

(कुछ सोच कर) पर हा! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सूना जान पड़ता है।

"अशनं वसनं वासो येषां चैवाविधानतः।
मगधेन समा काशी गंगाप्यंगारवाहिनी ॥*"

विश्वामित्र को पृथ्वी दान कर के जितना चित्त प्रसन्न नहीं हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिये दुखी होता

---

* जिन का भोजन, वस्त्र और निवास ठीक ठीक नहीं है उन को काशी भी मगह है और गंगा भी तपाने वाली हैं।

है। हा! कैसे कष्ट की बात है, राज पाट धन धाम सब छूटा, अब दक्षिणा कहां से देंगे। क्या करें! हम सत्य धर्म कभी छोड़ेहींगे नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे और जो वह शाप न भी देंगे तो क्या? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाए बिना शरीर भी तो नहीं त्याग सकते। क्या करें? कुबेर को जीत कर धन लावें? पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है; तो क्या किसी से मांग कर दें? पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारे, फिर ऋण काढ़ें? पर देंगे कहां से? हा! देखो, काशी में आकर लोग संसार के बंधन से छूटते हैं, पर हम को यहां भी हाय हाय मची है। हा! पृथ्वी! तू फट क्यों नहीं जाती कि मैं अपना कलंकित मुंह फिर किसी को न दिखाऊं! (आतंक से) पर यह क्या? सूर्य्यवंश में उत्पन्न होकर हमारे यह कर्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिये बिना पृथ्वी में समा जाना सोचें। (कुछ सोच कर) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही नहीं काम करती। क्या करें? हमें तो संसार सूना देख पड़ता है। (चिन्ता कर के एक साथ हर्ष से) वाह! अभी तो स्त्री, पुत्र और हम तीन २ मनुष्य तैयार हैं। क्या हम लोगों के बिकने से सहस्र स्वर्णमुद्रा भी न मिलेगी? तब फिर किस बात का इतना सोच? न जानै बुद्धि इतनी देर तक कहां सोई थी। हम ने तो पहले ही विश्वामित्र से कहा था :—

बेचि देह दारा सुअन, होय दास हू मन्द।
राखि है निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द॥

(नेपथ्य में) तो क्यों नहीं जल्दी अपने को बेचता ? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे २ दक्षिणा के वास्ते लगे फिरें ?

ह० ।—अरे ! मुनि तो आ पहुंचे । क्या हुआ आज उन से एक दो दिन की अवधि और लेंगे ।

(विश्वामित्र आते हैं ।)

वि० ।—(आप ही आप) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी इसी दुष्ट के कारण सब बहक गई । कुछ इन्द्र के कहने ही पर नहीं, हमारा इस पर स्वतः भी क्रोध है; पर क्या करें, इस के सत्य, धैर्य और विनय के आगे हमारा क्रोध कुछ काम नहीं करता । यद्यपि यह राज्यभ्रष्ट हो चुका, पर जब तक इसे सत्यभ्रष्ट न कर लूंगा तब तक मेरा सन्तोष न होगा । (आगे देख कर) अरे यही दुरात्मा (कुछ रुक कर) वा महात्मा हरिश्चन्द्र है । (प्रगट) क्यों रे ! आज महीने में कै दिन बाकी हैं ? बोल कब दक्षिणा देगा ?

ह० ।–(घबड़ा कर) अहा ! महात्मा कौशिक भगवन् ! प्रणाम करता हूं (दण्डवत् करता है) ।

वि० ।—हुई प्रणाम, बोल तैं ने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया ? आज महीना पूरा हुआ, अब मैं एक क्षण भर भी न मानूंगा । दे अभी नहीं तो—(शाप के वास्ते कमण्डल से जल हाथ में लेते हैं ।)

ह० ।—(पैरों पर गिर कर) भगवन् ! क्षमा कीजिये । यदि आज सूर्यास्त के पहिले मैं न दूं तो जो चाहे कीजियेगा । मैं अभी अपने को बेच कर मुद्रा ले आता हूं ।

वि० ।—(आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रगट) अच्छा आज सांझ तक और सही। सांझ को न देगा तो मैं शाप ही न दूंगा वरंच त्रैलोक्य में आज ही विदित कर दूंगा कि हरिश्चन्द्र सत्यभ्रष्ट हुआ। (जाते हैं)

ह० ।—भला किसी तरह मुनि से प्राण बचे। अब चलें अपना शरीर बेच कर दक्षिणा देने का उपाय सोचें। हा! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है, इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिस ने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल लाल आंखें नहीं देखी हैं। (आगे चल कर) अरे क्या बाजार में आ गए, अच्छा, (सिर पर तृण रख कर) * अरे सुनो भाई सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदारो, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं, किसी को लेना हो तो लो। (इसी तरह कहता हुआ इधर उधर फिरता है) देखो कोई दिन वह था कि इसी मनुष्य-विक्रय को अनुचित जान कर हम दूसरे को दण्ड देते थे, पर आज वही कर्म हम आप करते हैं। दैव बली है। (अरे सुनो भाई इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है। ऊपर देखकर) क्या कहा? "क्यों तुम ऐसा दुष्कर कर्म करते हो?" आर्य्य यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देख कर) क्या कहा? "तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो, और किस तरह रहोगे?" इस का क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वह करेंगे; समझते सब कुछ हैं, पर इस अवसर पर

---

* उस काल में जब कोई दास्य स्वीकार करता था तो सिर पर तृण रखता था।

समझना कुछ काम नहीं आता, और जैसे स्वामी रक्खेगा वैसे रहेंगे। जब अपने को बेच ही दिया तब इस का क्या विचार है। (ऊपर देख कर) क्या कहा "कुछ दाम कम करो।" आर्य हम लोग तो क्षत्रिय हैं, हम दो बात कहां से जानें। जो कुछ ठीक था कह दिया।

(नेपथ्य में से)

आर्य्यपुत्र! ऐसे समय में हम को छोड़े जाते हो! तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रह के क्या करूंगी? स्त्री को अर्द्धाङ्गिनी कहते हैं, इस से पहिले बायां अंग बेच लो तब दहिना अंग बेचो।

ह०।—(सुन कर बड़े शोक से) हा! रानी की यह दशा इन आंखों से कैसे देखी जायगी।

(सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं)।

शै०।—कोई महात्मा कृपा कर के हम को मोल ले तो बड़ा उपकार हो।

बा०।—अम को बी कोई मोल ले तो बला उपकाल ओ।

शै०।—(आंखों में आंसू भर कर) पुत्र! चन्द्रकुलभूषण महाराज बीरसेन का नाती और सूर्य्यकुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र हो कर तूं क्यों ऐसे कातर वचन कहता है! मैं अभी जीती हूं! (रोती है)

बा०।—(मां का अंचल पकड़ के) मां! तुम को कोई मोल लेगा तो अम को बी मोल लेगा। आं आं मा लोती काए को ओ (कुछ रोना सा मुंह बना के शैव्या का आंचल पकड़ के झूलने लगता है)।

शै० ।—(आंसू पोंछ कर) मेरे भाग्य से पूछ ।

ह० ।—अहह ! भाग्य ! यह भी तुम्हें देखना था ! हा ! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई, हम उन को कुछ धीरज भी न दे आए। उन की अब कौन गति होगी। हा ! यह नहीं कि राज छूटने पर भी छुटकारा हो अब यह देखना पड़ा। हृदय ! तुम इस चक्रवर्ती की सेवा योग्य बालक और स्त्री को बिकता देख कर टुकड़े २ क्यों नहीं हो जाते ? (बारंबार लम्बी सांस लेकर आंसू बहाता है।)

शै० ।—(कोई महात्मा इत्यादि कहती हुई ऊपर देख कर) क्या कहा ? "क्या २ करोगी ?" पर पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़ कर और सब सेवा करूंगी। (ऊपर देख कर) क्या कहा ? "इतने मोल पर कौन लेगा ?" आर्य्य ! कोई साधु ब्राह्मण महात्मा कृपा कर के ले ही लेंगे।

(उपाध्याय और बटुक आते हैं)।

उ० ।—क्यों रे कौंडिन्य ! सच ही दासी बिकती है ?

ब० ।—हां गुरु जी ! क्या मैं झूठ कहूंगा ? आप ही देख लीजियेगा।

उ० ।—तो चल, आगे २ भीड़ हटाता चल, देख, धारा-प्रवाह की भांति कैसे सब कामकाजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं, भीड़ के मारे पैर धरने की जगह नहीं है और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता।

ब० ।—(आगे २ चलता हुआ) हटो भाई हटो (कुछ आगे बढ़ कर) गुरु जी ! यह जहां भीड़ लगी है वहीं होगी।

उ० ।—(शैव्या को देख कर) अरे यही दासी बिकती है ?

शै० । - (अरे कोई हम को मोल ले इत्यादि कहती और रोती है ।)

बा० ।—(माता की भांति तोतली बोली से कहता है ।)

उ० ।—पुत्री ! कहो तुम कौन कौन सेवा करोगी ?

शै० ।—पर-पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट-भोजन छोड़ कर और जो जो कहियेगा सब सेवा करूंगी ।

उ० ।—वाह ! ठीक है । अच्छा, लो यह सुवर्ण । हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र की अग्नि की सेवा से घर के काम काज नहीं कर सकती तो तुम सम्हालना ।

शै० ।—(हाथ फैला कर) महाराज ! आप ने बड़ा उपकार किया ।

उ० ।—(शैव्या को भली भांति देख कर आप ही आप) आहा ! यह निस्सन्देह किसी बड़े कुल की है । इस का मुख सहज लज्जा से ऊंचा नहीं होता और दृष्टि बराबर पैर ही पर है । जो बोलती है वह धीरे धीरे और बहुत सम्हाल के बोलती है । हा ! इस की यह गति क्यों हुई ! (प्रगट) पुत्री ! तुम्हारे पति हैं न ?

शै० ।—(राजा की ओर देखती है ।)

ह० ।—(आप ही आप दुख से) अब नहीं हैं । पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो !

उ० ।—(राजा को देख कर आश्चर्य से) अरे यह विशाल नेत्र, प्रशस्त वक्षस्थल, और संसार की रक्षा करने के योग्य लंबी २ भुजा वाला कौन मनुष्य है, और मुकुट

के योग्य सिर पर तृण क्यों रक्खा है? (प्रगट) महात्मा तुम हम को अपने दुख का भागी समझो और कृपा पूर्वक अपना सब वृत्तान्त कहो।

ह० ।—भगवन्! और तो विदित करने का अवसर नहीं है, इतना ही कह सकता हूं कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई।

उ० ।—तो हम से धन लेकर आप शीघ्र ही ऋण मुक्त हूजिए!

ह० ।—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) राम राम! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है। आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी?

उ० ।—तो पांच सौ मोहर पर आप दोनों में से जो चाहे सो हमारे संग चले।

शै० ।—(राजा से हाथ जोड़ कर) नाथ! हमारे आछत आप मत बिकिये, जिस में हम को अपनी आंख से यह न देखना पड़े, हमारी इतनी बिनती मानिये। (रोती है)।

ह० ।—(आंसू रोक कर) अच्छा! तुम्ही जाओ। (आप ही आप) हा! यह बज्र हृदय हरिश्चन्द्र ही का है कि अब भी नहीं विदीर्ण होता!

शै० ।—(राजा के कपड़े में सोना बांधती हुई) नाथ! अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे। (रोती हुई उपाध्याय से) आर्य्य! आप क्षण भर क्षमा करैं तो मैं आर्य्यपुत्र का भली भांति दर्शन कर लूं। फिर यह मुख कहां और मैं कहां।

उ० ।—हां ! हां ! मैं जाता हूं, कौंडिन्य यहां है तुम उस के साथ आना (जाता है) ।

शै० ।—(रोकर) नाथ ! मेरे अपराधों को क्षमा करना ।

ह० ।—(अत्यन्त घबड़ा कर) अरे अरे विधाता ! तुझे यही करना था (आप ही आप) हा ! पहिले महारानी बना कर अब दैव ने इसे दासी बनाया । यह भी देखना बदा था । हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान सूर्य का भी मुख मलिन हो रहा है । (रोता हुआ प्रगट रानी से) प्रिये ! सर्व भाव से उपाध्याय को प्रसन्न करना और सेवा करना ।

शै० ।—(रोकर) नाथ ! जो आज्ञा ।

वटु० ।—उपाध्याय जी गये, अब चलो जल्दी करो ।

ह० ।—(आंखों में आंसू भर के) देवी ! (फिर रुक कर, अत्यन्त सोच से आप ही आप) हाय ! अब मैं देवी क्यों कहता हूं, अब तो बिधाता ने इसे दासी बनाया, (धैर्य से) देवी ! उपाध्याय की आराधना भली भांति करना और इन के सब शिष्यों से भी सुहृद भाव रखना, ब्राह्मण की स्त्री की प्रीति पूर्वक सेवा करना, बालक का यथा सम्भव पालन करना और अपने धर्म और प्राण की रक्षा करना । विशेष हम क्या समझावें जो जो दैव दिखावे उसे धीरज से देखना (आंसू बहते हैं) ।

शै० ।—जो आज्ञा (राजा के पैरों पर गिर के रोती है) ।

ह० ।—(धैर्य पूर्वक) प्रिये ! देर मत करो, वटुक घबड़ा रहे हैं ।

शै० ।—(उठ कर रोती और राजा की ओर देखता हुई धीरे २ चलती है)।

बा० ।—(राजा से) पिता मा कश्रां जाती पै ?

ह० ।—(धैर्य से आंसू रोक कर) जहां हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बा० ।—(बटुक से) अले मा को मत ले जा। (मा का आंचल पकड़ के खींचता है)।

बटु० ।—(बालक को ढकेल कर) चल चल देर होती है।

बा० ।—(ढकेलने से गिर कर रोता हुआ उठ कर अत्यन्त क्रोध और करुणा से मातापिता की ओर देखता है) .

ह० ।—ब्राह्मण देवता ! बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होना (बालक को उठा कर धूर पोंछ के मुंह चूमता हुआ) पुत्र ! मुझ चाण्डाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है ? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिये। जाओ माता के संग, मुझ भाग्यहीन के साथ रह कर क्या करोगे ? (रानी से) प्रिये ! धैर्य धरो। अपना कुल और जाति स्मरण करो। अब जाओ देर होती है।

(रानी और बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं)।

ह० ।—धन्य हरिश्चन्द्र !. तुम्हारे सिवाय और ऐसा कठोर हृदय किस का होगा ? संसार में धन और जन छोड़ कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं पर तुम ने उस का भी त्याग किया।

(विश्वामित्र आते हैं)।

ह० ।—(पैर पर गिर के प्रणाम करता है।)

वि० ।—ला दे दक्षिणा ! अब सांझ होने में कुछ देर नहीं है।

ह० ।—(हाथ जोड़ कर) महाराज आधी लीजिये आधी अभी देता हूं (सोना देता है)।

वि० ।—हम आधी दक्षिणा ले के क्या करें, दे चाहे जहां से सब दक्षिणा।

(नेपथ्य में)

धिक् तपो धिक् व्रतमिदं धिक् ज्ञानं धिक् बहुश्रुतम्।
नीतवानसियद्ब्रह्मन् हरिश्चन्द्रमिमांदशाम् ॥

वि० ।—(बड़े क्रोध से) आः हम को धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है? (ऊपर देख कर) अरे विश्वेदेवा ! (क्रोध से जल हाथ में ले कर) अरे क्षत्रिय के पक्षपातियो ! तुम अभी विमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में तुम्हारा जन्म हो और वहां भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ मारे जाओ *। (जल छोड़ते हैं)।
(नेपथ्य में हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है)।
(सुन कर और ऊपर देख कर आनन्द से) हहहह ! अच्छा हुआ ! यह देखो किरीट कुण्डल बिना मेरे क्रोध से बिमान से छूट कर विश्वेदेवा उलटे ही हो कर नीचे गिरते हैं। और हम को धिक्कार दें।

ह० ।—(ऊपर देख कर भय से) वाहरे तप का प्रभाव !

---

* यही पांचो विश्वेदेवा विश्वामित्र के शाप से द्वापर मे द्रौपदी के पांच पुत्र हुये थे जिन्हें अश्वत्थामा ने बालकपन ही मे मार डाला।

(आप ही आप) तब तो हरिश्चन्द्र को अब तक शाप नहीं दिया है यह बड़ा अनुग्रह है। (प्रगट) भगवन्! यह स्त्री बेच कर आधा धन पाया है सो लें, और आधा हम अपने को बेच कर अभी देते हैं।

(नेपथ्य में)

अरे अब तो नहीं सही जाती।

वि०।—हम आधा न लेंगे चाहे जहां से अभी सब दे।

ह०।—(अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है)।

(चांडाल के वेष में धर्म और सत्य आते हैं *)।

धर्म।—(आप ही आप)।

हम प्रतच्छ हरिरूप जगत हमरे बल चालत।
जल थल नभ थिर मो प्रभाव मरजाद न टालत॥
हम हीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी।
इक हम हीं संग जात, तजत जब पितु सुत नारी॥

सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो॥

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि के समान दूसरा आज त्रिभुवन में नहीं है।

(आगे बढ़ कर प्रगट) अरे! हरजनवां! मोहर का संदूक ले आया है न?

---

* कांत कछे, काला रंग, लाल नेत्र, सिर भर छोटे २ घुंघराले बाल और शरीर नंगा, बातों से मतवालापन झलकता हुआ।

सत्य।—क चौधरी! मोहर ले के का करबो?

धर्म—तोंह से का काम पूछै से?

(दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं)

ह०।—(अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि दो तीन बेर पुकार के इधर उधर घूम कर) हाय! कोई नहीं बोलता और कुलगुरु भगवान् सूर्य भी आज हम से रुष्ट हो कर शीघ्र ही अस्ताचल जाया चाहते हैं (घबराहट दिखाता है)

धर्म।—(आप ही आप) हाय हाय! इस समय इस महात्मा को बड़ा ही कष्ट है। तो अब चलें आगे। (आगे बढ़ कर) अरे! अरे! हम तुम को मोल लेंगे लेव यह पचास सै मोहर लेव।

ह०।—(आनन्द से आगे बढ़ कर) वाह कृपानिधान! बड़े अवसर पर आए। लाइये (उस को पहिचान कर) आप मोल लोगे?

धर्म।—हां, हम लोग लेंगे। (सोना देना चाहता है)

ह०।—आप कौन हैं?

धर्म—

हम चौधरी डोम सरदार। अमल हमारा दोनों पार॥
सब मसान पर हमरा राज। कफन मांगने का है काज॥
फूलमती देवी* के दास। पूजैं सती मसान निवास॥
धनतेरस औ रात दिवाली। बल चढ़ाय के पूजैं काली॥
सो हम तुम को लैंगे मोल। देंगे मुहर गांठ से खोल॥

---

* प्राचीन काल में चाण्डालों की कुलदेवी चंडकात्यायनी थीं, परन्तु इस काल में फूलमती इन लोगों की कुलदेवी है।

(मत्त की भांति चेष्टा करता है ।)

ह० ।—(बड़े दुःख से) अहह ! बड़ा दारुण व्यसन उपस्थित हुआ है । (विश्वामित्र से) भगवन् ! मैं पैर पड़ता हूं, मैं जन्म भर आप का दास हो कर रहूंगा, मुझे चाण्डाल होने से बचाइये ।

वि० ।—छिः मूर्ख ! भला हम दास ले के क्या करेंगे? " स्वयं दासास्तपस्विनः" ।

ह० ।—(हाथ जोड़ कर) जो आज्ञा कीजियेगा हम सब करेंगे ।

वि० ।—सब करेगा न ? (ऊपर हाथ उठा कर) धर्म के साक्षी देवता लोग सुनें, यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूंगा ।

ह० ।—हां हां, जो आप आज्ञा कीजियेगा सब करूंगा ।

वि० ।—तो इसी गांहक के हाथ अपने को बेच कर अभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे ।

ह० ।—जो आज्ञा (आप ही आप) अब कौन सोच है । (प्रगट धर्म से) तो हम एक नियम पर बिकेंगे !

धर्म ।—वह कौन ?

ह० ।—भीख असन कम्बल बसन, रखि हैं दूर निवास ।
जो प्रभु आज्ञा होइ है, करि हैं सब ह्वै दास ॥

धर्म ।—ठीक है, लेव सोना (दूर से राजा के आंचल में मोहर देता है)

ह० ।—(ले कर हर्ष से आप ही आप)

ऋण छूट्यो पूरयो बचन, द्विजहु न दीनो शाप।
सत्य पालि चंडाल हू, होइ आजु मोहि दाप॥

(प्रगट विश्वामित्र से) भगवन् ! लीजिये यह मोहर।

वि० ।—(मुंह चिढ़ा कर) सचमुच देता है ?

ह० ।—हां हां, यह लीजिये ! (मोहर देते हैं)।

वि० ।—(ले कर) स्वस्ति। (आप ही आप) बस अब चलो बहुत परीक्षा हो चुकी। (जाना चाहते हैं)

ह० ।—(हाथ जोड़ कर) भगवन् ! दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न ?

वि० ।—हां, क्षमा हुआ। अब हम जाते हैं।

ह० ।—भगवन् ! प्रणाम करता हूं।

(विश्वामित्र आशीर्वाद दे कर जाते हैं)

ह० ।—अब चौधरी जी (लज्जा से रुक कर) स्वामी की जो आज्ञा हो वह करें।

धर्म ।—(मत्त की भांति नाचता हुआ)

जाओ अभी दक्खिनी मसान। लेव वहां कफ्फन का दान।
जो कर तुम को नहीं चुकावे। सो किरिया करने नहिं पावे॥
चलो घाट पर करो निवास। भए आज से हमरे दास॥

ह० ।—जो आज्ञा।

(जवनिका गिरती है)

सत्यहरिश्चन्द्र का तीसरा अङ्क समाप्त हुआ।

चौथा अङ्क ।

स्थान—दक्षिण श्मशान, नदी, पीपल का बड़ा पेड़, चिता, मुरदे, कौए, सियार, कुत्ते, हड्डी इत्यादि ।

(कम्बल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिये हुए राजा हरिश्चन्द्र दिखाई पड़ते हैं ।)

ह० ।—(लंबी सांस ले कर) हाय ! अब जन्म भर यही दुख भोगना पड़ेगा ।

जाति दास चंडाल की, घर घन घोर मसान ।
कफन कसोटी को करम, सब ही एक समान ॥

न जानें ! विधाता का क्रोध इतने पर भी शान्त हुआ कि नहीं । बड़ों ने सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है । दक्षिणा का ऋण चुका तो यह कर्म करना पड़ा । हम क्या क्या सोचैं ? अपनी अनाथ प्रजा को, या दीन नातेदारों को, या अशरण नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सूनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, या उस अनजान बालक को, या अपने ही इस चंडालपने को । हा ! बटुक के धक्के से गिर कर रोहिताश्व ने क्रोध भरी और रानी ने जाते समय करुणा भरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलती । (घबड़ा कर) हा देवी ! सूर्यकुल की बहू और चन्द्रकुल की बेटी हो कर तुम बेची गई और दासी बनीं । हा ! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गुथ सकती थीं उन से बरतन कैसे

मांजोगी ? (मोह प्राप्त होने चाहता है पर सम्हल कर) अथवा क्या हुआ ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा।

बेचि देह दारा सुअन, होइ दास हू मन्द।
राख्यो निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द ॥

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

अरे ! यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी ? किसी पुन्यात्मा का मुरदा आया होगा। तो हम सावधान हो जायँ (लट्ठ कन्धे पर रख कर फिरता हुआ) खबरदार ! खबरदार !! बिना हम से कहे और बिना हमें आधा कफन दिये कोई संस्कार न करे (यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा से इधर उधर देखता फिरता है)। (नेपथ्य में कोलाहल सुन कर) हाय हाय ! कैसा भयंकर श्मशान है ! दूर से मण्डल बांध बांध कर चोंच बाए, डैना फैलाए, कंगालों की तरह मुर्दों पर गिद्ध कैसे गिरते हैं और कैसा मांस नोच नोच कर आपुस में लड़ते और चिल्लाते हैं। इधर अत्यन्त कर्णकटु अमंगल के नगाड़े की भांति एक के शब्द की लाग से दूसरे सियार कैसे रोते हैं। उधर चिराइन फैलाती हुई चट चट करती चिताएं कैसी जल रही हैं, जिन में कहीं से मांस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू वा चरबी बहती है। आग का रंग मांस के सम्बन्ध से नीला पीला हो रहा है, ज्वाला घूम घूम कर निकलती है। आग कभी एक साथ धधक उठती है, कभी मन्द हो जाती है। धूंआं चारो ओर छा रहा है। (आगे देख कर आदर से) अहा ! यह बीभत्स व्यापार

भी बड़ाई के योग्य है। शव ! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो; अतएव कहा है—

"मरनो भलो बिदेश को, जहां न अपुनो कोय।
माटी खांय जनावरां, महा महोच्छव होय॥"

अहा ! देखो।

सिर पै बैठ्यो काग आंख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहि स्यार अतिहि आनँद उर धारत॥
गिद्ध जांघ कहं खोदि खोदि कै मांस उचारत।
स्वान आंगुरिन काटि काटि कै खान बिचारत॥

बहु चील नोचि लै जात तुच मोद मढ़्यो सब को हियो।
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन कहँ दियो॥

अहा ! शरीर भी कैसी निस्सार वस्तु है !

सोई मुख सोई उदर, सोई कर पद दोय।
भयो आजु कछु और ही, परसत जेहि नहिं कोय॥
हाड़ मांस लाला रकत, बसा तुचा सब सोय।
छिन्न भिन्न दुरगन्ध मय, मरे मनुस के होय॥
कादर जेहि लखिकै डरत, पंडित पावत लाज।
अहो ! व्यर्थ संसार को, विषय बासना साज॥

अहा ! मरना भी क्या वस्तु है।

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यौ।
सोई अँग जेहि प्रिय करि जान्यौ॥
सोई भुज जे पिय गर डारे।
सोइ भुज जिन नर बिक्रम पारे॥

सोई पद जिहि सेवक बन्दत ।
सोई छबि जेहि देखि अनन्दत ॥

सोइ रसना जहँ अंमृत बानी ।
जेहि सुनि के हिय नारि जुड़ानी ॥

सोई हृदय जहं भाव अनेका ।
सोई सिर जहं निज बच टेका ॥

सोई छबि-मय अंग सुहाए ।
आजु जीव बिनु धरनि सुहाए ॥

कहां गई वह सुन्दर सोभा ।
जीवत जेहि लखि सब मन लोभा ॥

प्रानहुं ते बढ़ि जा कहं चाहत ।
ता कहं आजु सबै मिलि दाहत ॥

फूल बोझ हू जिन न सहारे ।
तिन पै बोझ काठ बहु डारे ॥

सिर पीड़ा जिन की नहिं हेरी ।
करत कपालक्रिया तिन केरी ॥

छिन हूं जे न भये कहुं न्यारे ।
तेऊ बन्धुगन छोड़ि सिधारे ॥

जो दृगकोर महीप निहारैं ।
आजु काक तेहि भोज बिचारत ॥

भुजबल जे नहिं भुवन समाए ।
ते लखियत मुख कफन छिपाए ॥

नरपति प्रजा भेद बिनु देखे।
गने काल सब एकहि लेखे॥
सुभग कुरूप अमृत बिख साने।
आजु सबै इक भाव बिकाने॥
पुरु दधीच कोऊ अब नाहीं?
रहे नावंहीं ग्रन्थन मांहीं॥

अहा! देखो वही सिर, जिस पर मंत्र से अभिषेक होता था, कभी नवरत्न का मुकुट रक्खा जाता था, जिस में इतना अभिमान था कि इन्द्र को भी तुच्छ गिनता था, और जिस में बड़े २ राज जीतने के मनोरथ भरे थे, आज पिशाचों का गेंद बना है और लोग उसे पैर से छूने में भी घिन करते हैं। (आगे देख कर) अरे यह श्मशान देवी हैं। अहा! कत्यायनी को भी कैसा बिभत्स उपचार प्यारा है? यह देखो! डोम लोगों ने सूखे गले सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़ २ कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है। मरे बैल और भैंसों के गले के घंटे पीपल की डार में लटक रहे हैं, जिन में लोलक की जगह नली की हड्डी लगी है। घंट के पानी से चारो ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के खंभे में लोहू के थापे लगे हैं। नीचे जो उतारों की बलि दी गई है उस के खाने को कुत्ते और सियार लड़ २ कर कोलाहल मचा रहे हैं। (हाथ जोड़ कर।)

* "भगवति! चंडि! प्रेते! प्रेतविमाने! लसत्प्रेते! प्रेतास्थि रौद्ररूपे! प्रेताशिनि! भैरवि! नमस्ते"

---

* इस में प्रायः सब श्लोक आर्यक्षेमीश्वर के बनाए चंडकौशिक से उद्धृत किए गये हैं।

(नेपथ्य में) राजन् ! हम केवल चण्डालों के प्रणाम के योग्य हैं। तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है। मांगो क्या वर मांगते हो ?

ह० ।—(सुन कर आश्चर्य से) भगवति ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिये।

(नेपथ्य में) साधु महाराज ! हरिश्चन्द्र साधु !

ह० ।—(ऊपर देख कर) अहा ! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनीवल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्त्तक था, जो दो पहर तक अपना प्रचण्ड प्रताप क्षण २ बढ़ाता गया, जो गगनाङ्गन का दीपक और कालसर्प का शिखामनि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भांति अपना सब तेज गंवा कर देखो समुद्र में गिरा चाहता है।

अथवा

सांझ सोई पट लाल कसे कटि सूरज खप्पर हाथ लह्यो है।
पच्छिन के बहु शब्दन के मिस जीअ उच्चाटन मन्त्र कह्यो है॥
मद्य भरी नरखोपरी सो ससि को नव बिम्बहू धाइ गह्यो है।
दै बलि जीव पसू यह मत्त ह्वै काल कपालिक नाचि रह्यो है॥
सूरज धूम बिना की चिता सोई अन्त में लै जल माहिं बहाई।
बोलैं घने तरु बैठि बिहंगम रोअत सो मनु लोग लोगाई॥
धूम अंधार कपाल निसाकर, हाड़ नछत्र लहू सी* ललाई।
आनंद हेतु निसाचर के यह काल मसान सो सांझ बनाई॥

---

* प्राचीन काल में राज के अपराधी लोग श्मशान पर गला काट कर मारे जाते थे इसी से यहां श्मशान के वर्णन में लोहू का वर्णन है।

अहा! यह चारो ओर से पक्षी लोग कैसा शब्द करते हुए अपने अपने घोसलों की ओर चले आते हैं। वर्षा से नदी का भयङ्कर प्रवाह। सांझ होने से श्मशान के पीपल पर कौओं का एक संग अमंगलशब्द से कांव कांव करना और रात के आगमन से एक सन्नाटे का समय चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है। अन्धकार बढ़ता ही जाता है। वर्षा के कारण इन श्मशानवासी मण्डूकों का टर टर करना भी कैसा डरावना मालूम होता है।

रुरुआ चहुं दिसि ररत डरत सुनि के नर नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी॥
अन्धकार बस गिरत काक अरु चील करत रव।
गिद्ध गरुड़ हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव॥
रोअत सियार, गरजत नदी, स्वान भूंकि डरपावई।
सँग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावई॥

इस समय यह चिता भी कैसी भयङ्कर मालूम पड़ती है। किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आंच से हाथ पैर जल कर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर आधा जला है, कहीं बिलकुल कच्चा है, किसी को वैसे ही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे ही छोड़ दिया है, किसी का मुंह जल जाने से दांत निकला हुआ भयंकर हो रहा है और कोई आग में ऐसा जल गया है कि कहीं पता भी नहीं है। वाह रे शरीर! तेरी क्या क्या गति होती है!!! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है, क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे उस को कीड़ों वा मछलियों से नुचवाना और सड़ाकर दुर्गन्धमय करना

बहुत ही बुरा है। न कुछ शेष रहेगा न दुर्गति होगी। हा! चलो आगे चलें। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर घूमता है)

(पिशाच और डाकिनीगण परस्पर आमोद करते और गाते बजाते हुए आते हैं)

पि० और डा०।—हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम,
हम सेवैं मसान शिव को भजैं बोलैं बम बम बम।

पि०।—हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ैंगे।
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सब का फोड़ैंगे।

डा०।—हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलावैंगी॥
हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावैंगी॥

सब।—हम नाचैं मिल कर थेई थेई थेई थेई कूदैं धम् धम् धम्। हैं भूत०—

पि०।—हम काट काट कर शिर को गेंदा उछालैंगे।
हम खींच खींच कर चरबी पंशाखा बालैंगे॥

डा०।—हम मांग में लाल लाल लोहू का सेंदुर लगावैंगी।
हम नस के तागे चमड़े का लहंगा बनावैंगी॥

सब।—हम धज से सज के बज के चलैंगे चमकैंगे चम चम चम।

पि०।—लोहू का मुंह से फर्र फर्र फुंहारा छोड़ैंगे।
माला गले पहिरने को अंतड़ी को जोड़ैंगे॥

डा०।—हम लाद के औंधे मुरदे चौकी बनावैंगी।
कफन बिछा के लड़कों को उस पर सुलावैंगी॥

सब० ।—हम मुख से गावैंगे ढोल बजावैंगे ढम ढम ढम ढम ढम ।

(वैसे ही कूदते हुए एक ओर से चले जाते हैं)

ह० ।—(कौतुक से देख कर) पिशाचों की क्रीड़ा—कुतूहल भी देखने के योग्य है ।' अहा ! यह कैसे काले २ झाड़ से सिर के बाल खड़े किये लंबे २ हाथ पैर बिकराल दांत लम्बी जीभ निकाले इधर उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं मानो भयानक रस की सेना मूर्तिमान हो कर यहां स्वच्छन्द बिहार कर रही है। हाय हाय ! इन का खेल और सहज ब्योहार भी कैसा भयंकर है। कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लहू भर भर कर के पीता है, कोई सिर का गेंद बना कर खेलता है, कोई अंतड़ी निकाल गले में डाले है और चन्दन की भांति चरबी और लहू शरीर में पोत रहा है, एक दूसरे से मांस छीन कर ले भागता है, एक जलता मांस मारे तृष्णा के मुंह में रख लेता है पर जब गरम मालूम पड़ता है तो थू थू कर के थूक देता है, और दूसरा उसी को फिर झट से खा जाता है। हा ! देखो यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ समेत नोच लाई है जिसे देखने को चारो ओर से सब भुतने एकत्र हो रहे हैं और सभों को इस का बड़ा कौतुक हो गया है ! हंसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते हैं और जलती लकड़ी और मुरदों के अंगों से लड़ते हैं और उन को ले ले कर नाचते हैं। यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो श्मशान के कुत्तों को पकड़ २ कर खा जाते हैं। अहा ! भगवान भूतनाथ

ने बड़े कठिन स्थान पर योगसाधना की है। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है) (ऊपर देख कर) आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अंधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता! चांडाल कुल की भांति श्मशान पर तम का भी आज राज हो रहा है! (स्मरण कर के) हा! इस दुःख की दशा में भी हम से प्रिया अलग पड़ी है। कैसी भी हीन अवस्था हो पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता। सच है—

"टूट ठाट घर टपकत खटियौ टूट।
पिय कै बांह उसिसवां सुख के लूट।"

बिधना ने इस दुख पर भी वियोग दिया। हा! यह वर्षा और यह दुख! हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा, पर जिस ने सपने में भी दुःख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होगी। हा देवि! धीरज धरो धीरज धरो! तुम ने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है जिस के साथ सदा दुख ही दुख है। (ऊपर देख कर) पानी बरसने लगा। अरे! (घोघी भली भांति ओढ़ कर) हम को तो यह वर्षा और श्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो—

चपला की चमक चहूंघा सों लगाई चिता चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है। हेती बगमाल स्याम बादर सु भूमि कारी बीरबधू लहू बूंद भुव लपटायो है॥ हरीचन्द नीर धार आंसू सी परत जहां दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है। दाहन बियोग दुखियान कों मरे हू यह देखो पापी पावस मसान बनि आयो है॥

(कुछ देर तक चुप रहकर) कौन है ? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिर कर)

इन्द्र काल हू सरिस जो, आयसु लांघै कोय ।
यह प्रचंड भुजदंड मम, प्रतिभट ताको होय ॥

अरे कोई नहीं बोलता । (कुछ आगे बढ़ कर) कौन है ?

(नेपथ्य में) हम हैं ।

ह० ।—अरे हमारी बात का यह उत्तर कौन देता है ? चलें जहां से आवाज आई है वहां चल कर देखें । (आगे बढ़ कर नेपथ्य की ओर देख कर) अरे यह कौन है ?

चिता भस्म सब अंग लगाए । अस्थि अभूषन बिबिध बनाए ॥
हाथ मसान कपाल जगावत । को यह चल्यो रुद्र सम आवत ॥

(कापालिक के वेष में धर्म आता है *)

धर्म ।—अरे हम हैं ।

वृत्ति अयाचित आत्म रति , करि जग के सुख त्याग ।
फिरहिं मसान मसान हम , धारि अनन्द विराग ॥

(आगे बढ़ कर महाराज हरिश्चन्द्र को देखकर आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत ।
जल थल नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत ॥
हमहीं नर के मीत सदा सांचे हितकारी ।
हमहीं इक संग जात तजत जब पितु सुत नारी ॥

---

* गेरुये वस्त्र का काछा काछे, गेरुआ कफनी पहिने, सिर के बाल खोले, सेंदुर का अर्द्धचन्द्र दिये, नंगी तलवार गले में लटकती हुई, एक हाथ में खप्पड़ बलता हुआ, दूसरे हाथ में चिमटा, अंग में भभूत पोते, नशे से आंखें लाल, लाल फूल की माला और हड्डी के आभूषण पहिने ।

सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सबजग जियो।
सोइ सत्य परिच्छिन नृपति को आजु भेष हम यह कियो॥

(कुछ सोच कर) राजर्षि हरिश्चन्द्र की दुःख परम्परा अत्यन्त शोचनीय और इन के चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं। अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है।

सहत बिबिध दुख मरिमिटत, भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छाड़हीं, जे जग सांचे लोग॥
बरु सूरज पच्छिम उगै, बिन्ध्य तरै जल मांहि।
सत्य बीर जन पै कबहुं, निज बच टारत नांहि॥

अथवा उन के मन इतने बड़े हैं कि दुःख को दुःख सुख को सुख गिनते ही नहीं, चलें उन के पास चलें। (आगे बढ़ कर और देख कर) अरे! यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं ?

(प्रगट) महाराज! कल्याण हो।

ह० ।—(प्रणाम कर के) आइये योगिराज!

ध० ।—महाराज हम अर्थी हैं।

ह० ।—(लज्जा और विकलता नाट्य करता है)

ध० ।—महाराज! आप लज्जा मत कीजिये। हम लोग योग बल से सब कुछ जानते हैं। आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने के लिये बहुत हैं। चन्द्रमा राहु से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवा कर भिक्षुकों का कल्याण करता है।

ह० ।—हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिये।

ध० ।—अंजन गुटिका पादुका, धातु भेद बैताल ।
 वज्र रसायन जोगिनी, मोहि सिद्धि यहि काल ॥*

ह० ।—तो मुझे जो आज्ञा हो वह करूं ।

ध० ।—आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गए हैं पर विघ्न इस में बाधक होते हैं, सो विघ्नों का निवारण कर दीजिये ।

ह० ।—आप जानते हैं कि मैं पराया दास हूं इस से जिस में मेरा धर्म न जाय वह मैं करने को तयार हूं ।

ध० ।—(आप ही) राजन् ! जिस दिन तुम्हारा धर्म जायगा उस दिन पृथ्वी किस के बल से ठहरेगी । (प्रत्यक्ष) महाराज ! इस में धर्म न जायगा, क्योंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उल्लंघन करते ही नहीं । सिद्धि का आकर इसी श्मशान के निकट ही है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूं आप विघ्नों का निषेध कर दीजिये ।

(जाता है)

ह० ।—(ललकार कर) हटो रे हटो विघ्नो ! चारो ओर से तुम्हारा प्रचार हम ने रोक दिया ।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज ! जो आज्ञा । आप से सत्य बीर की आज्ञा कौन लांघ सकता है ?

---

* अंजनसिद्धि से जमीन में गड़े खजाने देख पड़ते हैं । गुटिका मुंह में रख कर वा पादुका पहिन कर चाहे जहां अलक्ष्य चला जाय । धातुभेद से औषध मात्र सिद्ध होती हैं । बैताल बस में हो कर यथेच्छ काम देता है । बज्र सिद्ध होने से जहां गिराओ वहां गिरता है । रसायन सिद्ध से चांदी सोना बनता है । जोगिनी सिद्ध होने से भूत भविष्य का वृत्तान्त कह देती है और सब इच्छा पूर्ण करती है । यही आठो सिद्धि हैं ।

खुल्यो द्वार कल्यान को, सिद्ध जोग तप आज।
निधि सिधि विद्या सब करहिं, अपुने मन को काज॥

ह० ।—(हर्ष से) बड़े आनन्द की बात है कि विघ्नों ने हमारा कहना मान लिया (विमान पर बैठी हुई तीनों महाविद्या आती हैं)। *

म० वि० ।—महाराज हरिश्चन्द्र ! बधाई है। हमी लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था, तब देवताओं ने माया से आप को स्वप्न में हमारा रोना सुना कर हमारा प्राण बचाया।

ह० ।—(आप ही आप) अरे यही सृष्टि की उत्पन्न पालन और नाश करनेवाली महाविद्या हैं, जिन्हें विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके। (प्रगट हाथ जोड़ कर) त्रिलोकविजयिनी महाविद्याओं को नमस्कार है।

म० वि० ।—महाराज ! हम लोग तो आप के बस में हैं। हमारा ग्रहण कीजिये।

ह० ।—देवियो ! यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि की वशवर्त्तिनी हो उन्हों ने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है।

म० वि० ।—धन्य महाराज ! धन्य, जो आज्ञा।

(जाती हैं)

---

* ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेश में, पर स्त्री का श्रृङ्गार। खेलने में चित्रपट के द्वारा परदे के ऊपर इन को दिखलावैंगे और इन की ओर से बोलनेवाला नेपथ्य में से बोलेगा।

(धर्म एक बैताल के सिर पर पिटारा रखवाए हुए आता है)

ध० ।—महाराज का कल्याण हो आप की कृपा से महानिधान * सिद्ध हुआ । आप को बधाई है । अब लीजिये इस रसेन्द्र को ।

याही के परभाव सो, अमरदेव सम होइ ।
जोगी जन विहरहिं सदा, मेरु शिखर भय खोइ ॥

ह० ।—(प्रणाम कर के) महाराज ! दास धर्म के यह विरुद्ध है । इस समय स्वामी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है ।

ध०—(आश्चर्य से आप ही आप) वाहरे महानुभावता ! (प्रगट) तो इस से स्वर्ण बना कर आप अपना दास्य छुड़ा लें ।

ह० ।—यह ठीक है पर मैं ने तो बिनती किया न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले सब स्वामी का है । क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना सत्व मात्र बेच चुका, इस से आप मेरे बदले कृपा कर के मेरे स्वामी ही को यह रसेन्द्र दीजिये ।

ध० । (आश्चर्य से आप ही आप) धन्य हरिश्चन्द्र ! धन्य तुम्हारा धैर्य ! धन्य तुम्हारा विवेक ! और धन्य तुम्हारी महानुभावता ! या—

चलै मेरु बरु प्रलय जल, पवन झकोरन पाय ।
पै बीरन के मन कबहुं, चलहिं नहीं ललचाय ॥

---

* महानिधान हुआसित धातु भेदी पारा जिसे बावन तोला पाव रत्ती कहते हैं ।

तो हमें भी इस में कौन हठ है (प्रत्यक्ष) बैताल ! जाओ, जो महाराज की आज्ञा है वह करो ।

बै० ।— जो रावल जी की आज्ञा ! (जाता है)

ध० ।—महाराज ! ब्राह्ममुहूर्त्त निकट आया अब हम को भी आज्ञा हो ।

ह० ।—योगिराज ! हम को भूल न जाइयेगा, कभी कभी स्मरण कीजियेगा ।

ध० ।—महाराज ! बड़े बड़े देवता आप का स्मरण करते हैं और करेंगे, मैं क्या कहूं ।

(जाता है)

ह० ।—क्या रात बीत गई ! आज तो कोई भी मुरदा नया नहीं आया । रात के साथ ही श्मशान भी शान्त हो चला, भगवान नित्य ही ऐसा करे ।

(नेपथ्य में घंटा नूपुरादि का शब्द सुन कर)

अरे ! यह बड़ा कोलाहल कैसा हुआ ?

(विमान पर अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और बारहों प्रयोग आदि देवता * आते हैं)

ह० ।—(आश्चर्य से) अरे यह कौन देवता बड़े प्रसन्न हो कर श्मशान पर एकत्र हो रहे हैं !

---

* साधारण देवी देवताओं के वेश में । अष्टसिद्धि यथा—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व । नव निधि यथा—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्चस् । बारह प्रयोग यथा—मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलना, विद्वेषण और कामनाशन ये छ बुरे और स्तंभन, वशीकरण, आकर्षण, बन्दीमोचन, कामपूरण और वाक्‌प्रसारण ये छ अच्छे । ये भी चित्रपट में दिखलाये जायंगे ।

दे० ।—महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो। आप के अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छूट कर स्वतन्त्र हो गए। अब हम आप के वश में हैं जो आज्ञा हो करें। हम लोग अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और बारह प्रयोग सब आप के हाथ में हैं।

ह० ।—(प्रणाम कर के) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हों तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जनों के और प्रयोग साधकों के पास जाओ।

दे० ।—(आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चन्द्र! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे। हमी लोगों की सिद्धि को बड़े २ योगी मुनि पच्च मरते हैं। पर तुम ने तृण की भांति हमारा त्याग कर के जगत का कल्याण किया।

ह० ।—आप लोग मेरे सिर आंखों पर हैं पर मैं क्या करूं, क्योंकि मैं पराधीन हूं। एक बात और भी निवेदन है। वह यह कि छ अच्छे प्रयोगों की तो हमारे समय में सद्यः सिद्धि होय पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलम्ब से हो।

दे० ।—महाराज! जो आज्ञा। हम लोग जाते हैं। आज आप के सत्य ने शिव जी के कीलन * को भी शिथिल कर दिया। महाराज का कल्याण हो। (जाते हैं)

---

* शिव जी ने साधनमात्र को कील दिया है जिस में जल्दी न सिद्ध हों, सो राजा हरिश्चन्द्र ने विघ्नों को जो रोक दिया इस में वह कीलन भी शिव जी की इच्छापूर्वक उस समय दूर हो गया था क्योंकि यह भी तो एक सब में बड़ा विघ्न था।

(नेपथ्य में इस भांति मानों राजा हरिश्चन्द्र नहीं सुनता)

(एक स्वर से) तो अप्सरा को भेजें ?

(दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख ! जिस को अष्टसिद्धि नवनिधियों ने नहीं डिगाया उस को अप्सरा क्या डिगावेंगी ?

(एक स्वर से) तो अब अन्तिम उपाय किया जाय ?

(दूसरे स्वर से) हां, तक्षक को आज्ञा दें।
अब और कोई उपाय नहीं है।

ह० ।—अहा अरुण का उदय हुआ चाहता है। पूर्व दिशा ने अपना मुँह लाल किया। (सांस ले कर)

"वा चकई को भयो चित चीतो चितोति चहूं दिसि चाय सों नांची। ह्वै गई छीन कलाधर की कला जामिनी जोति मनो जम जांची॥ बोलत बैरी बिहंगम देव संजोगिन की भई संपति कांची। लोहू पियो जो बियोगिन को सो कियो मुख लाल पिशाचिनि प्राची।"

हा ! प्रिये ! इन बरसातों की रात को तुम रो रो के बिताती होगी ! हा ! वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर बेचा तब दास हुए, तुम बिना बिके ही क्यों दास बन गये ?

जेहि सहसन परिचारिका, राखत हाथहिं हाथ।
सो तुम लोटत धूर मैं, दास बालकन साथ॥
जाकी आयसु जग नृपति, सुनतहि धारत सीस।
तेहि द्विज-बटु आज्ञा करत, अहह कठिन अति ईस॥
बिनु तन बेचे बिनु दिये, बिनु जग ज्ञान बिबेक।
दैव सर्प दंशित भए, भोगत कष्ट अनेक॥

(घबड़ा कर) नारायण ! नारायण ! मेरे मुख से क्या निकल गया ? देवता उस की रक्षा करें। (बाईं आंख का फड़कना दिखाकर) इसी समय में यह महा अपशकुन क्यों हुआ ? (दहिनी भुजा का फड़कना दिखाकर) अरे और साथ ही यह मंगल शकुन भी ! न जानें क्या होनहार है? वा अब क्या होनहार है ? जो होना था सो हो चुका। अब इस से बढ़ कर और कौन दशा होगी ? अब केवल मरण मात्र बाकी है। इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीन होने के पहिले ही शरीर छूटे, क्योंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है पर बश क्या है ?

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चन्द्र ! सावधान । यही अन्तिम परीक्षा है। तुम्हारे पुरुषा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े एक टक तुम्हारा मुख देख रहे हैं। आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुःख किसी को नहीं हुआ था। ऐसा न हो कि इन का सिर नीचा हो। अपने धैर्य का स्मरण करो।

ह० ।—(घबड़ा कर ऊपर देख कर) अरे यह कौन है ? कुलगुरु भगवान सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं। (ऊपर) पितः मैं सावधान हूं, सब दुःखों को फूल की माला की भांति ग्रहण करूंगा।

(नेपथ्य में रोने की आवाज़ सुन पड़ती है)

ह० ।—अरे अब सवेरा होने के समय मुरदा आया ! अथवा चांडाल-कुल का सदा कल्याण हो, हमें इस से क्या ? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय ! कैसी भई ! हाय बेटा ! हमें रोती छोड़ के कहां चले गए ! हाय ! हायरे !

ह० ।—अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इस को पुत्र का है । हाय हाय ! हम को भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और बीभत्स कर्म सौंपा है ! इस से भी वस्त्र मांगना पड़ेगा !

(रोती हुई शैव्या रोहिताश्व का मुरदा लिये आती है)

शै० ।—(रोती हुई) हाय बेटा ! जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले ! हाय ! हमारी बिपत और बुढ़ौती की ओर भी तुम ने न देखा ! हाय ! हायरे ! अब हमारी कौन गति होगी ! (रोती है)

ह० ।—हाय हाय ! इस के पति ने भी इस को छोड़ दिया है । हा ! इस तपस्विनी को निष्करुण बिधि ने बड़ा ही दुःख दिया है ।

शै० ।—(रोती हुई) हाय बेटा ! अरे आज मुझे किस ने लूट लिया ! हाय मेरी बोलती चिड़िया कहां उड़ गई ! हाय अब मैं किस का मुंह देख के जीऊंगी ! हाय मेरी अन्धी की लकड़ी कौन छीन ले गया ! हाय मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किस ने तोड़ डाला ! अरे बेटा तैं तो मरे पर भी सुन्दर लगता है ! हाय रे ! अरे बोलता क्यों नहीं ? बेटा जल्दी बोल, देख, मा कब की पुकार रही है ! बच्चा ! तू तो एक ही दफे पुकारने में दौड़ कर गले से लपट जाता था, आज क्यों नहीं बोलता ! (शव को बार बार गले लगाती देखती और चूमती है)

ह० ।—हाय हाय ! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता ।

शै० ।—(पागल की भांति) अरे यह क्या हो गया है ? बेटा कहां गए हो ? आओ जल्दी ! अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगती है, यहां मुझ को कौन ले आया है ? रे ! बेटा जल्दी आओ । अरे क्या कहते हो, मैं गुरु को फल लेने गया था, वहां काले सांप ने मुझे काट लिया ? हाय ! हाय रे !! अरे कहां काट लिया ? अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावे बच्चे को । अरे वह सांप कहां गया, हम को क्यों नहीं काटता ? काट रे काट, क्या उस सुकुंआर बच्चे ही पर बल दिखाना था ? हमैं काट । हाय ! हम को नहीं काटता । अरे यहां तो कोई सांप वांप नहीं है । मेरे लाल झूठ बोलना कब से सीखे ? हाय हाय ! मैं इतना पुकारती हूं और तुम खेलना नहीं छोड़ते ? बेटा गुरु जी पुकार रहे हैं, उन के होम की बेला निकली जाती है । देखो, बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं । दो जल्दी उन को दूब और बेलपत्र ! हाय ! हम ने इतना पुकारा, तुम कुछ नहीं बोलते ! (ज़ोर से) बेटा सांझ भई, सब विद्यार्थी लोग घर फिर आये; तुम अब तक क्यों नहीं आये ? (आगे शव देख कर) हाय हाय रे ! अरे मेरे लाल को सांप ने सचमुच डंस लिया ! हाय लाल ! हाय रे ! मेरे आंखों के उंजियाले को कौन ले गया ! हाय मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहां उड़ गया ! बेटा ! अभी तो बोल रहे थे, अभी क्या हो गया ! हाय मेरा बसा घर आज किस ने उजाड़ दिया ! हाय मेरी कोख में किस ने आग लगा दी ! हाय मेरा कलेजा किस ने निकाल लिया ! (चिल्ला

चिल्ला कर रोती है) हाय लाल कहां गए ? अरे ! अब मैं किस का मुंह देख के जीऊंगी रे ? हाय ! अब मा कह के मुझ को कौन पुकारेगा ? अरे, आज किस बैरी की छाती ठंढी भई रे ? अरे, तेरे सुकुंआर अंगों पर भी काल को तनिक दया न आई ! अरे बेटा ! आंख खोलो । हाय ! मैं सब बिपत तुम्हारा ही मुंह देख कर सहती थी, सो अब कैसे जीती रहूंगी । अरे लाल ! एक बेर तो बोलो ! (रोती है) ।

ह० ।—न जाने क्यों इस के रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है ।

शै० ।—(रोती हुई) हा नाथ ! अरे अपने गोद के खेलाये बच्चे की यह दशा क्यों नहीं देखते ? हाय ! अरे तुम ने तो इस को हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना, सो हम ने इस की यह दशा कर दी । हाय ! अरे ऐसे, समय में भी आ कर नहीं सहाय होते ? भला एक बार लड़के का मुंह तो देख जाओ ! अरे, मैं अब किस के भरोसे जीऊंगी ?

ह० ।—हाय हाय ! इस की बातों से तो प्राण मुंह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है । यहां से हट चलें (कुछ दूर हट कर उस की ओर देखता खड़ा हो जाता है) ।

शै० ।—(रोती हुई) हाय ! यह विपत का समुद्र कहां से उमड़ पड़ा ! अरे छलिया मुझे छल कर कहां भाग गया । (देख कर) अरे आयुष की रेखा तो इतनी लम्बी है, फिर अभी से यह बज्र कहां से टूट पड़ा । अरे ऐसा सुन्दर मुंह, बड़ी २ आंख, लम्बी २ भुजा, चौड़ी छाती

गुलाब सा रंग ! हाय मरने के तुझ में कौन लच्छन थे जो भगवान ने तुझे मार डाला ! हाय लाल ! अरे, बड़े २ जोतसी गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीयेगा, सो सब झूठ निकला ! हाय ! पोथी, पत्रा, पूजा, पाठ, दान, जप, होम, कुछ भी काम न आया ! हाय ! तुम्हारे बाप का कठिन पुन्य भी तुम्हारा सहाय न हुआ और तुम चल बसे ! हाय !

ह० ।—अरे, इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है (शव को भली भांति देख कर) अरे, इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती के से दिखाई पड़ते हैं ! हाय ! न जानें किस बड़े कुल का दीपक आज इस ने बुझाया है, और न जानें किस नगर को आज इस ने अनाथ किया है। हाय ! रोहिताश्व भी इतना बड़ा हुआ होगा। (बड़े सोच से) हाय हाय ! मेरे मुंह से क्या अमंगल निकल गया ! नारायण ! (सोचता है)

शै० ।—भगवान् विश्वामित्र ! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हुए ! हाय !

ह० ।—(घबड़ा कर) हाय हाय ! यह क्या ? (भली भांति देखकर रोता हुआ) हाय ! अब तक मैं संदेह ही में पड़ा हूं ? अरे मेरी आंखें कहां गईं थीं जिन ने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना, और कान कहां गए थे जिन ने अब तक महारानी की बोली न सुनी ! हा पुत्र ! हा लाल ! हा सूर्यवंश के अंकुर ! हा हरिश्चन्द्र की विपत्ति के एकमात्र अवलम्ब ! हाय ! तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया मा को छोड़ कर कहां गए ? अरे तुम्हारे

कोमल अंगों को क्या हो गया ? तुम ने क्या खेला, क्या खाया, क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे ? पुत्र ! स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझ से कहते, मैं अपने बाहु बल से तुम को इसी शरीर से स्वर्ग पहुंचा देता। अथवा अब इस अभिमान से क्या ? भगवान् इसी अभिमान का फल यह सब दे रहा है। हाय पुत्र ! (रोता है)

आह ! मुझ से बढ़कर और कौन मन्दभाग्य होगा ! राज्य गया, धन जन कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्र-शोक उपस्थित हुआ। भला अब मैं रानी को क्या मुंह दिखाऊं ? निस्सन्देह मुझ से अधिक अभागी और कौन होगा ? न जानें हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं ? जो कुछ हमने आज तक किया वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुःख न देखना पड़ता। हमारा धर्म का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले। निस्सन्देह मैं महा अभागा और बड़ा पापी हूं। (रङ्ग-भूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलयकाल आ गया ? नहीं, यह बड़ा भारी असगुन हुआ है। इस का फल कुछ अच्छा नहीं वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा ? हा ! न जानें किस अप-राध से दैव इतना रूठा है। (रोता है) हा सूर्य्यकुल-आल-बालप्रवाल ! हा हरिश्चन्द्र-हृदयानन्द ! हा शैव्यावलम्ब ! हा वत्स रोहिताश्व ! हा मातृ-पितृ-विपत्तिसहचर ! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़ कर कहां गए ! आज हम सच मुच चाण्डाल हुए। लोग कहेंगे कि इस ने न जानें कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा। हाय ! हम संसार को क्या मुंह दिखावेंगे ? (रोता है) वा संसार में इस बात के

प्रगट होने के पहले ही हम भी प्राण त्याग करें ? हा निर्लज्ज प्राण ! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ? हा वज्रहृदय ! इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता ? अरे नेत्रो ! अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो ? या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है, समय बीता जाता है। इस के पूर्व कि किसी से सामना हो, प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है (पेड़ के पास जाकर फांसी देने के योग्य डाल खोज कर उस में दुपट्टा बांधता है)। धर्म्म ! मैं ने अपने, जान सब अच्छा ही किया, परन्तु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा सो मुझे क्षमा करना ! (दुपट्टे की फांसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर) गोविन्द ! गोविन्द ! यह मैं ने क्या अनर्थ अधर्म विचारा ! भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैं ने प्राण-त्याग करना चाहा ! भगवान सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण नारायण ! इस इच्छाकृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा ? हे सर्व्वान्तर्यामी जगदीश्वर ! क्षमा करना, दुःख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, अब तो मैं चांडालकुल का दास हूं, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र ! चलूं, अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊं, वा देखूं अब दुःखिनी शैव्या क्या करती है ? (शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है)

शै० ।—(पहली तरह बहुत रोकर) हाय ! अब मैं क्या करूं ! अब मैं किस का मुंह देख कर संसार में जीऊंगी ! हाय ! मैं आज से निपूती भई ! पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी ! हा ! नित्य सबेरे उठकर अब मैं किस की चिन्ता करूंगी ! खाने के समय मेरी गोद में बैठ कर और मुझ से मांग मांग कर अब

कौन खायगा ! मैं परोसी थाली सूनी देख कर कैसे प्राण रक्खूंगी (रोती है) ! हाय ! खेलते २ आकर मेरे गले से कौन लपट जायगा ! और मा मा कह कर तनक २ बातों पर कौन हठ करेगा ! हाय ! मैं अब किस को अपने आंचल से मुंह की धूल पोंछ कर गले लगाऊंगी और किस के अभिमान से विपत में भी फूली २ फिरूंगी ! (रोती है) या जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जी के क्या करूंगी ! (छाती पीट कर) हाय प्रान ! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ?. हाय ! मैं ऐसी स्वारथी हूं कि आत्महत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती ! नहीं नहीं, अब मैं न जीऊंगी । या तो इस पेड़ में फांसी लगा कर मर जाऊंगी या गंगा में कूद पडूंगी (उन्मत्ता की भांति उठ कर दौड़ना चाहती है)

ह० ।—(आड़ में से)

तनहिं बेंच दासी कहवाई ।
मरत स्वामि आयसु बिन पाई ॥
करु न अधर्म सोच जिय माहीं ।
"पराधीन सपने सुख नाहीं" ॥

शै० ।—(चौकन्नी होकर) अहा ! यह किस ने इस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया । सच है, मैं अब इस देह की कौन हूं जो मर सकूं ! हाय दैव ! तुझ से यह भी न देखा गया कि मैं मरकर भी सुख पाऊं ? (कुछ धीरज धर के) तो चलूं . छाती पर बज्र धर के अब लोक रीति करूं । (रोती और लकड़ी चुन कर चिता बनाती हुई) हाय ! जिन हाथों से ठोंक ठोंक कर रोज

सुलाती थी उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रक्खूंगी, जिस के मुंह में छाला पड़ने के भय से कभी मैं ने गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे—(बहुत ही रोती है)

ह०।—धन्यदेवी, आखिर तो चन्द्र-सूर्यकुल की स्त्री हो, तुम न धीरज धरोगी तो कौन धरेगा।

शै०।—(चिता बना कर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती और रोती है)

ह०।—तो अब चलें उस से आधा कफन मांगें (आगे बढ़ कर और बलपूर्वक आंसुओं को रोककर शैव्या से) महाभागे! श्मशानपति की आज्ञा है कि आधा कफन दिये बिना कोई मुरदा फूकने न पावे सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो तब क्रिया करो (कफन मांगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्प वृष्टि होती है)

(नेपथ्य में)

अहो धैर्य्य महो सत्य महो दान महो बलम्।
त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्व्वं लोकोत्तरं कृतम्॥

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै०।—हाय! इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है? वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं नहीं तो आर्य्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखंड है।

ह०।—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) नारायण! नारायण! महाभागे ऐसा मत कहो, शास्त्र, ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित्त होगा।

अपना धर्म बिचारो। लाओ मृतकम्बल हमें दो और अपना काम आरम्भ करो (हाथ फैलाता है)।

शै० ।—(महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्त्ती का चिन्ह देख कर और कुछ स्वर कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर) हा आर्यपुत्र ! इतने दिन तक कहां छिपे थे ? देखो अपने गोद के खेलाए दुलारे पुत्र की दशा। तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भांत मसान में पड़ा है (रोती है)।

ह० ।—प्रिये ! धीरज धरो, यह रोने का समय नहीं है। देखो सवेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आजाय और हम लोगों को जान ले और एक लज्जा मात्र बच गई है वह भी जाय। चलो कलेजे पर सिल रख कर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कम्बल हम को दो।

शै० ।—(रोती हुई) नाथ ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आंचल फाड़ कर इसे लपेट लाई हूं, उस में से भी जो आधा दे दूंगी तो यह खुला रह जायगा। हाय ! चक्रवर्त्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता ! (बहुत रोती है)

ह०—(बलपूर्वक आंसुओं को रोककर और बहुत धीरज धर कर) प्यारी ! रो मत। ऐसे समय में तो धीरज और धरम रखना काम है। मैं जिस का दास हूं उस की आज्ञा है कि बिना आधा कफन लिये क्रिया मत करने दो। इस से मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझ कर तुम से इस का आधा कफन न लूं तो बड़ा अधर्म हो। जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की

... के लिये धर्म ... धर्म ...
... के ... जल्दी
... है,
...
... (... फैलाता है)।

... रोती हुई) ... का सुन-
... पृथ्वी हिलती
है ... और ... का सा
... होता है, ... और बस ...
और जय २ की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं, और
भगवान नारायण प्रगट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ
पकड़ लेते है)

।—बस महाराज बस ! धर्म और सत्य सब की परमावधि
हो गई । देखो तुम्हारे पुण्यभय से पृथ्वी बारंबार
कांपती है, अब त्रैलोक्य की रक्षा करो। (नेत्रों ...
आंसू बहते हैं)

जोड़ के)
... हुआ,
पाया।

।—(साष्टांग दंडवत करके रोता हुआ गद्‌गद स्वर से)
भगवन् ! मेरे वास्ते आप ने परिश्रम किया ! कहां यह
श्मशान भूमि कहां यह मर्त्यलोक, कहां मेरा मनुष्य
शरीर, और कहां पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानन्दघन साक्षात्
आप ! (प्रेम के आंसुओं से और गद्‌गद कंठ होने से
कुछ कहा नहीं जाता)

।—(शैव्या से) पुत्री ! अब शोच मत कर ! धन्य तेरा
सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है
(रोहिताश्व की ओर देखकर) वत्स रोहिताश्व ! उठो,

देखो तुम्हारे माता पिता देर से तुम्हारे मि... व्याकुल हो रहे हैं।

(रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भग... को प्रणाम कर के माता पिता का मुंह देखने लगता... आकाश से फिर पुष्पवृष्टि होती है)

ह० और शै० ।--(आश्चर्य, आनन्द, करुणा और प्रेम से... नहीं सकते, आंखों से आंसू बहते हैं और एकटक भग... के मुखारविंद की ओर देखते हैं) श्रीमहादेव, पार्वती... भैरव, धर्म, सत्य, इन्द्र और विश्वामित्र आते हैं) *

सब ।—धन्य महाराज हरिश्चन्द्र धन्य ! जो आप ने कि... सो किसी ने न किया, न करेगा।

(राजा हरिश्चन्द्र शैव्या और रोहिताश्व सब को प्रणा... करते हैं)

वि० ।—महाराज ! यह केवल चन्द्र सूर्य तक आप की कीर्ति... स्थिर रखने के हेतु मैं ने छल किया था सो क्षमा कीजिये और अपना राज्य लीजिये।

(हरिश्चन्द्र भगवान और धर्म का मुंह देखते हैं)

धर्म ।—महाराज ! राज आप का है, इस का मैं साक्षी हूं, आप निस्सन्देह लीजिये।

सत्य ।—ठीक है, जिस ने हमारा अस्तित्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसी का पृथ्वी का राज है।

---

* श्री महादेव, पार्वती और भैरव का ध्यान सब को विदित है। इ... और विश्वामित्र का लिख चुके हैं। धर्म चतुर्भुज, श्याम रङ्ग, पीताम्बर, द... पत्र और कमल हाथ में। सत्य, शुक्लवर्ण श्वेत वस्त्राभरण, नारायण के चा... शस्त्र हाथ में।

श्रीमहादेव।—पुत्र हरिश्चन्द्र! भगवान नारायण के अनुग्रह से ब्रह्मलोक पर्यन्त तुम ने पाया, तथापि मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारी कीर्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्ती होय।

पा०।—पुत्री शैव्या! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्त्ति स्वर्ग की स्त्रियां गावें। तुम्हारी पुत्रबधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करें।

(हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं)

भै०।—और जो तुम्हारी कीर्त्ति कहे सुनें और उस का अनुस्मरण करे उस को भैरवी यातना न हो।

इन्द्र०।—(राजा को आलिंगन कर के और हाथ जोड़ के) महाराज! मुझे क्षमा कीजिये। यह सब मेरी दुष्टता थी। परन्तु इस बात से आप का तो कल्याण ही हुआ, स्वर्ग कौन कहे आप ने अपने सत्यबल से ब्रह्मपद पाया। देखिये, आप की रक्षा के हेतु श्री शिवजी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे, नारद जी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आप के हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया।

०।—(गद्गद स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ानेवाला और कौन है?

भग० ।—महाराज ! और भी जो इच्छा हो मांगो ।

ह० ।—(प्रणाम करके गद्गद् स्वर से) प्रभु ! आपके दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आपकी आज्ञानुसार यह वर मांगता हूं कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ वैकुंठ जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहै ।

भग० ।—एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट पतंग जीव मात्र सब परमधाम जायेंगे, और कलियुग में धर्म के सब चरण टूट जायंगे, तब भी वह तुम्हारी इच्छानुसार सत्य मात्र एक पद से स्थित रहेगा । इतना ही देकर मुझे सन्तोष नहीं हुआ कुछ और भी मांगो । मैं तुम्हें क्या दूं ! क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका । तथापि मेरी इच्छा ऐसी है कि तुम को कुछ और वर दूं । तुम्हें वर देकर मुझे सन्तोष नहीं होता ।

ह० ।—(हाथ जोड़ कर) भगवन् ! मुझे अब कौन इच्छा है ! मैं और क्या वर मांगूं । तथापि भरत का यह वाक्य सुफल हो—

"खलगनन सों सज्जन दुखी मत होइं, हरिपद रति रहै ।
उपधर्म छूटैं, सत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै ॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, सब जग सुख लहै ।
तजि ग्राम कविता सुकविजन की, अमृतबानी सब कहै ॥"

(पुष्पवृष्टि और बाजे की ध्वनि के साथ जवनिका गिरती है)

इति श्री सत्यहरिश्चन्द्र नाटक समाप्त हुआ ।